मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

रमज़ान के बाद

''रमज़ान वास्तव में एक दौर का समापन नहीं है बल्कि एक नये दौर का आरम्भ है। रमज़ान अन्त नहीं, शुरूआत है। रमज़ान सबकुछ लेकर और सारी नेमतें व समस्त उपकारों को लपेट कर नहीं जाता है। वह बहुत कुछ देकर, झोलियां भर कर, और नेमतें लुटाकर जाता है। रमज़ान के बाद आदमी गुनाहों से अवश्य हल्का होता है लेकिन ज़िम्मेदारियों से बोझल हो जाता है एवं उसके बोझ तले दब जाता है।''

हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह०)

JUNE-JULY 17

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल नदवी
दारे अरफ़ात, तकिया कलां, रायबरेली

₹ 10/-

ईदुल फ़ित्र की नमाज़

ईद के दिन की सुन्नत व सवाब के काम:

१. ग़ुस्ल करना और मिस्वाक करना।

२. जो अच्छे से अच्छा कपड़ा हो उसे पहनना।

३. ख़ुशबू लगाना।

४. ईदगाह में नमाज़ पढ़ना यानि ईद की नमाज़े हर मस्जिद में पढ़ी जा सकती हैं लेकिन ईदगाह में पढ़ना सुन्नत है। रसूलुल्लाह स०अ० और सभी सहाबियों ने ऐसा ही किया है।

५. ईदगाह तक पैदल जाना। अगर माजूर हो या ईदगाह बहुत दूर हो तो सवारी पर जाने में कोई हर्ज नहीं।

६. एक रास्ते से जाना और दूसरे रास्ते से वापस आना।

ईद की नमाज़ का तरीक़ा

नियत: नियत करता हूं मैं दो रकआत वाजिब ईदुल फ़ित्र मय ज़ाएद छः तकबीरों के, पीछे इस इमाम के, मुंह मेरा काबे शरीफ़ की तरफ़।

नियत के बाद इमाम तेज़ आवाज़ से "अल्लाहु अकबर" कहकर हाथ बांध ले और मुक़्तदी धीरे से "अल्लाहु अकबर" कहकर हाथ बांध ले और फिर दोनों "सना" पढ़ें। सना के बाद इमाम फिर बुलन्द आवाज़ से तकबीर कहकर अपने दोनों हाथों को कानों तक ले जाए और फिर छोड़ दे, तमाम मुक़्तदी भी उसके साथ ऐसा ही करें। फिर दूसरी बार इमाम तकबीर कहते हुए अपने दोनों हाथों को कानों की लौ तक ले जाए और फिर छोड़ दें, मुक़्तदी भी ऐसा करें, फिर तीसरी बार इमाम और तमाम मुक़्तदी तकबीर कहकर हाथ उठाएं और इस बार हाथ छोड़ें नहीं बल्कि बांध लें।

तकबीर के बाद इमाम धीरे से "बिस्मिल्लाह" पढ़े, फिर इमाम बुलन्द आवाज़ से सूरह फ़ातिहा और क़ुरआन की कोई सूरह पढ़े। फिर रुकूअ और सज्दा करके एक रकआत पूरी कर ले।

दूसरी रकआत में खड़े होकर पहले सूरह फ़ातिहा और कोई सूरह पढ़े और सूरह ख़त्म कर ले तो रुकूअ में न जाए, बल्कि फिर तकबीर कहकर दोनों हाथ कानों तक ले जाए और छोड़ दे, और मुक़्तदी भी ऐसा करें, फिर दूसरी बार तकबीर कहकर हाथ उठाए और छोड़ दे, और तमाम मुक़्तदी भी ऐसा करें, फिर तीसरी बार इमाम तकबीर कहकर हाथ उठाए और छोड़ दे, और मुक़्तदी भी ऐसा करें, फिर चौथी बार इमाम तकबीर कहकर रुकूअ में चला जाए और उसके साथ सभी मुक़्तदी भी रुकूअ में चले जाएं और जैसे आम तौर पर नमाज़ पूरी की जाती है पूरी करें।

मुहम्मद नजमुद्दीन नदवी

بسم الله الرحمن الرحيم

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

अंक:०६-०७ जून - जुलाई २०१७ ई० वर्ष:९

संरक्षक

हज़रत मौलाना
सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी
(अध्यक्ष - दारे अरफ़ात)

निरीक्षक

मौ० वाज़ेह रशीद हसनी नदवी
जनरल सेकेरेट्री- दारे अरफ़ात

सम्पादक

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

सम्पादकीय मण्डल

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी
अब्दुस्सुबहान नाखुदा नदवी
महमूद हसन हसनी नदवी

सह सम्पादक

मो० नफ़ीस ख़ाँ नदवी

अनुवादक

मोहम्मद सैफ़

मुद्रक

मो० हसन नदवी

इस अंक में:

ईमान के नवनिर्माण का महीना.....२
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

रमज़ान — रहमत और मग़फ़िरत का महीना.....३
हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी रह०

तरावीह — रमज़ान की अहम ख़ासियत.....६
हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी

यूरोप की आन्तरिक समस्याओं पर एक नज़र.....८
मौलाना सैय्यद मुहम्मद वाज़ेह रशीद हसनी नदवी

नेक कामों में जल्दी और दृढ़ता.....११
मौलाना अब्दुल्लाह हसनी नदवी रह०

एकेश्वरवाद क्या है?.....१३
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

जुमा की नमाज़ के कुछ आदेश.....१६
मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

आख़िरत पर ईमान.....१९
मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

राष्ट्रपति ट्रम्प का रहस्यमयी व्यक्तित्व.....२०
जनरल मिर्ज़ा असलम बेग

एतिकाफ़ के कुछ मसले.....२२
समय की महत्वपूर्ण समस्या.....२४
मौलाना अज़ीज़ुल हसन सिद्दीक़ी

ज़कात महत्व एवं मसले.....२६
रमज़ान का महीना पवित्र कुरआन की रोशनी में.....३०
अब्दुस्सुब्हान नाखुदा नदवी

रोज़े का इतिहास.....३१
अल्लामा सैय्यद सुलेमान नदवी

E-Mail: markazulimam@gmail.com www.abulhasanalinadwi.org

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल-नदवी दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली,यू०पी०.229001

प्रति अंक 20रू

मो० हसन नदवी ने एस० ए० आफसेट प्रिन्टर्स, मस्जिद के पीछे, फाटक अब्दुल्ला खाँ, सब्ज़ी मण्डी, स्टेशन रोड रायबरेली से छपवाकर आफिस अरफ़ात किरण,मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल-नदवी, दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली से प्रकाशित किया।

वार्षिक 100रू०

सम्पादकीय

ईमान के नवनिर्माण का महीना

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

यह पवित्र महीना ईमान के नवनिर्माण का है। मुबारक हो ईमानवालों को, अल्लाह से क़रीब होने की चाहत रखने वालों को कि अल्लाह ने फिर मौक़ा दिया है किरदार को निखारने का, कर्मों को संवारने का, दिल व दिमाग़ की पवित्रता का। यह महीना सबसे बढ़कर अपने मन की पड़ताल का महीना है। स्वयं के सुधार का महीना है। संयमी स्वभाव बनाने का महीना है।

अल्लाह तआला स्वयं कहता है:

"ऐ ईमान वालों! तुमपर रोज़े फ़र्ज़ किये गये जैसा कि तुमसे पहले लोगों पर किये गये थे, अजब नहीं कि तुम मुत्तक़ी (परहेज़गार) बन जाओ।" (सूरह बक़रा: 183)

तक़वा (निग्रह–संयम) क्या है? यह केवल ज़ाहिरी दिखावे का नाम नहीं। ज़ाहिरी आमाल (कर्म) व इबादत भी इसके लिए पर्याप्त नहीं। वास्तव में यह दिल की हालत है। एक हदीस में रसूलुल्लाह (स0अ0) ने कहा:

"तक़वा यहां होता है और सीने की ओर रसूलुल्लाह (स0अ0) ने तीन बार इशारा किया।"

इस महीने में अल्लाह की विशेष कृपा होती है। यह मग़फ़िरत (मोक्ष) का महीना है। दिल इससे नर्म होते हैं। दिल भलाई की ओर आकर्षित होता है। मुबारक हैं वे लोग जो इसका पूरा लाभ उठाते हैं। अपने दिल की दुनिया आबाद करते हैं। अपनी कमज़ोरियों को दूर करने की कोशिश करते हैं और अपना जायज़ा लेकर एक नये जीवन का आरम्भ करते हैं। नये हौसले और ताज़ा ईमान के साथ वे इस महीने का स्वागत भी करते हैं और फिर इसके बाद नई ऊर्जा के साथ कार्यक्षेत्र में उतरते हैं।

उनके जीवन में यह माह नवजीवन का संदेश लेकर आता है और उनकी रगों में ताज़ा ख़ून दौड़ा कर जाता है। उनके अन्दर एक नया जोश पैदा हो जाता है। वे फिर अपने लिए नहीं अल्लाह के लिए जीते हैं, अल्लाह के लिए मरते हैं।

"कह दीजिए मेरी नमाज़, मेरी कुर्बानी, मेरा जीना, मेरा मरना सब अल्लाह के लिए है, जो जहानों का पालनहार है। उसका कोई शरीक (साझी) नहीं और उसी का मुझे आदेश भी है और मैं सबसे पहले सर झुकाने वाला हूं।"

(सूरह इनआम: 162–163)

जिसने सुबह सवेरे (प्रातःकाल) से लेकर सूरज डूबने तक हलाल व पाक खानों से, पीने की चीज़ों से, यहां तक कि आब–ए–ज़मज़म से भी केवल अल्लाह के लिए परहेज़ किया। अब उसके लिए क्या मुश्किल है कि वह उन सभी चीज़ों से बचे जो अल्लाह के आदेश को तोड़ने वाली हों। अल्लाह को नाराज़ करने वाली हों। उसके लिए ब्याज लेना, हराम व शक–शुब्हे वाले माल का प्रयोग करना, किसी का हक़ मारना, किसी को कष्ट पहुंचाना कैसे संभव हो सकता है। जिसने रमज़ान में तरावीह की बीस रकअतें भलिभांति अदा की हों, उसके लिए इशा की नमाज़ से ग़फ़लत कैसे संभव है। जिसने रमज़ान में तलाश कर–करके ज़रूरतमन्दों की मदद की हो, वह कैसे किसी को दुख दे सकता है और किसी को दुखी देख सकता है।

रमज़ान एक नया जीवन देकर जाता है किन्तु उसी को जो लेना चाहे। जिसका रमज़ान और ग़ैर रमज़ान बराबर हो। जिसको इस महीने की महानता का अनुमान ही न हो और यह महीना उससे नाराज़ होकर चला जाए, उसके लिए इससे बढ़कर बदनसीबी की बात और क्या हो सकती है।

"हलाक (विनष्ट) हो वह व्यक्ति जिसको रमज़ान का मुबारक महीना मिले और उसकी बख़्शिश न हो।"

आइए! हम संकल्प ले कि इस महीने का एक–एक क्षण नेक भावनाओं के साथ गुज़ारेंगे। इसकी बरकतों को अपने अन्दर समाहित करेंगे कि ज़ाहिर व बातिन (अन्तः व वाह्य) में इसका नूर पैदा हो और इसकी रोशनी पूरी दुनिया महसूस करे।

रमज़ान – रहमत और मग़फ़िरत का महीना

हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह०)

एक बार रसूलुल्लाह (स0अ0) ने कहा कि मेम्बर के क़रीब हो जाओ। सहाबा किराम (रज़ि0) मेम्बर के क़रीब हो गए। जब रसूलुल्लाह (स0अ0) ने मेम्बर के पहले दर्जे अर्थात ज़ीने पर क़दम रखा तो कहाः आमीन! जब दूसरे पर क़दम रखा तो कहाः आमीन! जब तीसरे पर क़दम रखा तो फिर कहाः आमीन! जब रसूलुल्लाह (स0अ0) खुत्बा (भाषण) देकर मेम्बर से नीचे उतरे तो सहाबा किराम ने पूछा कि हमने आप आपसे मेम्बर पर चढ़ते हुए ऐसी बात सुनी जो पहले कभी नहीं सुनी थी। आप (स0अ0) ने बताया किः

"उस वक़्त जिब्राईल अलैहिस्सलाम मेरे सामने आ गए थे (जब पहले दर्जे (ज़ीने) में क़दम रखा तो) उन्होंने कहाः हलाक (विनष्ट) हो जाए वह व्यक्ति जिसने रमज़ानुल मुबारक का मुबारक महीना पाया फिर भी उसे मुक्ति न मिली हो। मैंने कहाः आमीन! फिर जब मैं दूसरे दर्जे (ज़ीने) पर चढ़ा तो उन्होंने कहा किः हलाक (विनष्ट) हो जाए वह व्यक्ति जिसके सामने आपका मुबारक ज़िक्र हो और वह दरूद न भेजे, मैंने कहाः आमीन! जब मैं तीसरे दर्जे पर चढ़ा तो उन्होंने कहाः हलाक (विनष्ट) हो जाए वह व्यक्ति जिसके सामने उसके माता–पिता या उनमें से कोई एक बूढ़ें हो जाएं और वह उनकी सेवा करके जन्नत में दाखिल न हो जाए। मैंने कहा आमीन!" (तिरमिज़ी)

रमज़ान ऐसा स्वर्णिम अवसर है कि यदि इसमें कोशिश करे तो एक रमज़ान सारे गुनाह बख़्शवाने के लिए पर्याप्त है। जो व्यक्ति रमज़ान के रोज़े रखे और यह यक़ीन करके रखे कि अल्लाह तआला के तमाम वादे सच्चे हैं और वह तमाम नेक कामों पर बेहतर बदला देगा। रसूलुल्लाह (स0अ0) का कथन हैः

"यानि जो व्यक्ति रमज़ान के रोज़े ईमान व सवाब की नियत के साथ रखे उसके पिछले गुनाह बख़्श दिये जाएंगे।

मुसलमानों का अस्ल बीमारी बुरी नियत नहीं बल्कि नियत का न होना है

ईमान व एहतिसाब (सवाब की नियत के साथ) का यह मतलब है कि अल्लाह तआला के तमाम वादों पर पूरा यक़ीन हो और हर अमल (कर्म) पर सवाब की नियत करे और निस्वार्थ रूप से व केवल अल्लाह के लिए अमल करे और अल्लाह की रज़ा (स्वीकृति) पाना मक़सद हो और हर अमल के वक़्त अल्लाह की मर्ज़ी को देखे। ईमान व सवाब की नियत ही है जो मनुष्य के कर्मों को फ़र्श से अर्श पर पहुंचा देती है। वास्तव में इसी की कमी है। मुसलमानों का असल बीमारी बुरी नियत नहीं बल्कि नियत का न होना है। यानि सिरे से वे नियत ही नहीं करते। हम वुज़ू करते हैं मगर उसमें नियत नहीं करते। हम दीन के दूसरे काम करते हैं मगर ईमान व सवाब की नियत का उद्देश्य हमारे सामने नहीं रहता है। जब बहुत से लोग किसी काम को करते हैं तो वह रस्म बन जाती है। रोज़े का एक आम माहौल होता है। ऐसे में कोई इसलिए से रोज़ा रखे कि हम रोज़ा न रखेंगे तो छिपकर खाने–पीने से क्या फ़ायदा? यह ख़्याल आया तो रोज़े की रूह निकल गयी। बीमारियों में भी अक्सर भूखा रहना पड़ता है, इसलिए रोज़े की विशेषता सिर्फ़ भूखा रहना नहीं है। रोज़े की हक़ीक़त है अल्लाह के आदेशों की पूर्ति। जो चीज़ें छोड़ने को कही गयी है उनको छोड़ देना। पहले हम यह अन्दर यह भाव उत्पन्न करें कि अल्लाह तआला वास्तव में है है। सवाब की लौ लगी हो और दिल को तसल्ली हो कि सवाब मिल रहा है इसी में आनन्द आए।

कर्म के स्वीकार होने की पहचान व लक्षण

किसी इबादत की विशेषता और उसकी स्वीकृति की दलील यह है कि उसको करने से दिल के अन्दर नर्मी व निर्मलता, शालीनता और नम्रता का भाव पैदा हो लेकिन जब उसके विपरीत घमन्ड और गुरूर और

विलक्षणता पैदा हो तो समझ लेना चाहिए कि हमारी इबादत स्वीकृत नहीं हुई है। इसमें कमी रह गई है इसलिए उन चीज़ों को दूर करने के लिए ईमान व सवाब की नियत को मद्देनज़र रखना और उसका ध्यान रहना आवश्यक है। बिना सोचे–समझे, बिना नियत के रोज़ा रख लेना, कोई और इबादत करना व्यर्थ है। एक साहब कहने लगे:

"मैं इसलिए रोज़े रखता हूं कि जो मज़ा इफ़्तार के वक़्त आता है वह दुनिया की किसी नेमत में नहीं।" हालांकि उनका अल्लाह तआला पर ईमान भी नहीं था। हमें चाहिए कि हम दिन में कई बार नियत को ताज़ा कर लिया करें। हर वक़्त इसका ध्यान रखें। रसूलुल्लाह (स0अ0) का कथन है कि:

आदमी की औलाद के हर अमल पर उसको दस से सात सौ गुना तक सवाब मिलेगा। अल्लाह ने फ़रमाया सिवाए रोज़े के क्योंकि वह मेरे लिए है और मैं ही उसका बदला दूंगा। यह बन्दा तमाम महबूब चीज़ें मेरे लिए छोड़ता है इसलिए सिफ़ मैं ही बदला दूंगा। (मुस्लिम)

आमाल (कर्म) ताक़त पैदा करते हैं

दूसरी बात यह है कि दीन के जितने कार्य हैं वह ताक़त पैदा करते हैं यानि एक इबादत दूसरी इबादत के लिए सहयोगी साबित होती है और इसके सहयोग का साधन बनती है। जिस तरह से एक ग़िज़ा (खाद्य पदार्थ) दूसरी गिज़ा के लिए सहयोगी साबित होता है उसी तरह एक फ़र्ज़ दूसरे फ़र्ज़ की अदायगी में सहयोगी साबित होता है और उसको ताक़त उपलब्ध कराता है। यह बात नहीं कि हर कार्य अलग–अलग है। हर एक की फ़र्जियत और उसका महत्व तो बहरहाल अपनी जगह है, लेकिन एक दूसरे से अलग नहीं बल्कि एक दूसरे की मदद के लिए हैं। उसी तरह से रोज़ा साल के पूरे ग्यारह महीने की इबादत के लिए ताक़त पैदा करता है। रोज़े की वजह से दूसरी इबादतो को अदा करने का शौक़ पैदा होता है और ताक़त मिलती है।

रोज़े का मक़सद मन को नियन्त्रित करना है

तीसरी बात यह है कि रोज़े का मक़सद यह है कि मन पर क़ाबू पाया जाए और रोज़े की वजह से मन पर क़ाबू पाना आसान हो जाए। दीन का शौक़ पैदा हो। इबादतों को अदा करने का शौक़ हो। अल्लाह तआला का कथन है:

यानि हर काम के करते वक़्त अल्लाह तआला की मर्जी का ख़्याल रखा जाए। तक़वा का अनुवाद कई लोगों ने लिहाज़ से किया है यानि हर काम के करते वक़्त उसका लिहाज़ व ध्यान रखा जाए। यह काम अल्लाह की मर्जी के अनुसार है या नहीं। हलाल व हराम की पहचान हो जाए। इस तरह से अभ्यास हो जाए कि आदत बन जाए। जिस तरह से आप ईद के दिन खाने–पीने में झिझक महसूस करते है क्योंकि एक महीने से दिन में खाने की आदत छूट गई थी। इस वजह से आपको खाना–पीना आदत के ख़िलाफ़ मालूम होता है। हालांकि यह अस्थायी चीज़ थी। इस तरह से गुनाहों से बचना, उससे परहेज़, चुग़ली व बुरी बातों से, गुस्सा व कपट से परहेज़ इस तरह हो कि आपकी आदत बन जाए। जो चीज़े स्थायी रूप से हराम हैं उनको करने में तो और भी ज़्यादा आपको चौकन्ना रहना चाहिए। रोज़े से ज़िन्दगी में बदलाव होना चाहिए। आप रोज़ा रखें लेकिन गाली देना, चुग़ली करना, बुरी बात कहना व गुस्सा करना व छल–कपट न छोड़े तो रोज़े से कोई फ़ायदा नहीं।

वास्तव में बात तो यह है कि रोज़ा आपकी ज़िन्दगी के अन्दर साफ़ तौर पर बदलाव कर दे। रोज़े में आपने गुनाहों से बचने का इरादा किया है तो उस पर क़ायम रहिये और उन गुनाहों को न कीजिए जिनको आपने रोज़े की वजह से छोड़ दिया था। अगर रोज़े के ख़त्म होते ही तमाम गुनाहों में फिर से पड़ गए तो इससे यही बात समझ में आएगी कि उसने रोज़ा तो रखा मगर रोज़ा क़ुबूल नहीं हुआ। हज तो किया मगर हज क़ुबूल नहीं हुआ। आप इस तरह से रोज़ा रखिए कि कोई ग़ैर मुस्लिम भी देखे तो समझे कि यह वाकई रोज़ा रखें हैं और यह रमज़ान के दिन हैं। पूरे सम्मान को ध्यान में रखा जाए और तमाम चीज़ों को पूरा किया जाए। एक बार रसूलुल्लाह (स0अ0) ने इरशाद फ़रमाया:

"जब तुममें से कोई व्यक्ति रोज़ा रखे और उससे कोई उलझने लगे तो कह दे कि मैं रोज़े से हूं।" मन की तमाम कमज़ोरियों को दूर करे। गुस्सा कम कर दे। कपट व ईर्ष्या को दूर कर दे। रोज़ा इस तरह से न रखे कि गुस्से में भरा हुआ बैठा रहे और लोग उससे केवल

इस वजह से बात करते हुए ख़ौफ़ महसूस करें कि भाई उनसे बात न करो, वरना वह बिगड़ जाएंगे। खाने में ज़र्रा बराबर नमक की कमी हो तो गुस्से की इन्तिहा कर दे। इन तमाम बातों से परहेज़ करे। अगर रोज़े के सभी तक़ाज़ों का लिहाज़ रखा गया तो उसका असर पूरे ग्यारह महीनों पर पड़ेगा और उसकी ज़िन्दगी में एक साफ़ तौर पर दिखाई देने वाला बदलाव आएगा।

रोज़े का मंशा

चौथी बात यह है कि रोज़ा जिन चीज़ों से सुसज्जित किया गया है उसका ध्यान रखें। रोज़े का यह मंशा मालूम होती है कि ज़्यादा से ज़्यादा अल्लाह तआला की तरफ़ आकर्षित हुआ जाए। न तिलावत किया, न ख़ैरात की, न तरावीह पढ़ी, सिर्फ़ रोज़ा रख लिया उससे कोई फ़ायदा नहीं। तौबा व इस्तिग़फ़ार का ज़्यादा से ज़्यादा हो, दुआ की तरफ़ ज़्यादा ध्यान दिया जाए। आख़िरी शब (रात) में उठें क्योंकि उसकी ज़्यादा अहमियत है। अल्लाह तआला उस वक़्त पुकारता है कि कोई मेरा दोस्त इस वक़्त मुझे पुकारे और मैं उसको सुनूं। रसूलुल्लाह (स0अ0) इसका बहुत ध्यान रखते थे।

ख़ैरात व सदक़े का महीना

इस महीने में ख़ैरात व सदक़ा भी ज़्यादा करें। रसूलुल्लाह (स0अ0) ने इस माहे मुबारक को नेकी और सुहानुभूति का महीना बताया है। यानि नेकी और ग़मख़्वारी का महीना। इसका मतलब यह है कि अल्लाह तआला की तरफ़ ज़्यादा ध्यान हो और सदक़ा व ख़ैरात में ज़्यादा हिस्सा लें और लोगों के हालात का सुराग लगाकर पता चलाएं। उनके यहां तोहफ़े और भेंट भेजे। अल्लाह के कितने बन्दे ऐसे हैं जिनको सिर्फ़ रोज़ा इफ़्तार करने के लिए मस्जिद में मिल जाता है फिर वह भूखे रहते हैं। इसलिए ऐसे ज़रूरतमन्द लोगों का पता लगाकर उनकी मदद की जाए। रसूलुल्लाह (स0अ0) इसका बड़ा ही ध्यान रखते थे। आपके बारे में आता है कि लोगों में सबसे ज़्यादा सख़ी (दानी) थे। दूसरे मौक़े पर आता है यानि तूफ़ान की तरह दान करते थे और उसमें बढ़चढ़ कर हिस्सा लेते थे और दिल खोलकर ग़रीबों, बेवाओं और यतीमों की मदद करते थे।

तौबा व इस्तिग़फ़ार का महीना

इन्सान को समझना चाहिए कि हमारी इबादत क्या हम तो अल्लाह तआला के लायक़ कुछ भी इबादत नहीं कर सकते। हम तौबा व इस्तिग़फ़ार भी अच्छी तरह न हीं कर सकते इसलिए हमें भूखों, लाचारों और मिस्कीनों की ही मदद करनी चाहिए ताकि मुमकिन है कि अल्लाह के किसी बन्दे का दिल खुश हो जाए तो अल्लाह तआला उसको कुबूल फ़रमा ले तो हमारा मक़सद पूरा हो जाए। वरना हमारी इबादत, हमारी तिलावत, हमारी नमाज़ तो इस लायक़ नहीं कि कुबूल हों, लेनिक अल्लाह की राह में कुछ ख़र्च करने से मुमकिन है कि अल्लाह तआला उसी को कुबूल फ़रमाए। इस महीने में हमें पूरी तरह ख़ैरात और सदक़े की तरफ़ आकर्षित होना चाहिए और हम कमर कस लें कि इस महीने से पूरा फ़ायदा उठाएंगे। हदीस शरीफ़ में आता है कि 'यानि ऐ ख़ैर के चाहने वाले आगे बढ़ और ऐ बुराई चाहने वाले पीछे हो।' दूसरी जगह आता है कि अल्लाह तआला क़यामत के दिन बन्दे से पूछेगा कि:

"ऐ बन्दे मैं बीमार था, तू मुझे देखने नहीं आया, मैं भूखा था, तूने मुझे खाना नहीं खिलाया" बन्दा जवाब में कहेगा कि ऐ अल्लाह, तू कैसे बीमार हो सकता है?तू कैसे भूखा रह सकता है? तो अल्लाह तआला कहेगा कि "मेरा फ़लां बन्दा बीमार था, अगर तू उसको देखने आता तो मुझें वहां पाता, मेरा फ़लां बन्दा भूखा था अगर तू उसको खाना खिलाता तो तू मुझे वहां मौजूद पाता।"

हमदर्दी व सुहानुभूति, त्याग व भलाई का महीना

इसलिए यह ज़रूरी है कि जो मोहताज व बेवाएं हैं, जो फ़क़ीर व ग़रीब हैं उनकी मदद की जाए। ग़रीबों की जो लड़किया हैं उनकी शादी करा दी जाए। अगर हमने ऐसा न किया तो अल्लाह तआला क़यामत के दिन हमसे पूछेगा और सख़्त पूछताछ करेगा। यह हमारा माल नही है जिसे हम ख़र्च करते हैं, बल्कि यह अल्लाह की अमानत है। हम अगर इसको आयोजनों में ख़र्च करते हैं तो ग़लत करते हैं। अगर इसको व्यर्थ ख़र्च करते हैं तो नाजायज़ करते हैं। हमारे लिए जायज़ नहीं है कि हम उसको खर्च करे। हमें इसकी फ़िक्र होनी चाहिए कि कितनी बेवाएं और ग़रीब हैं। कितने मोहताज व फ़क़ीर हैं जिन्हें ज़रूरत है?हमें उन तमाम जगहों पर खर्च करना चाहिए जहां दूसरों की मदद हो सके और अल्लाह तआला राज़ी हो।

तरावीह – रमज़ान की अहम ख़ासियत और कुरआन मजीद की हिफ़ाज़त का बड़ा ज़रिया

हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी

कुरआन मजीद एक तरफ़ तो इन्सानी रहनुमाई के लिए चमत्कारिक स्तर की महान किताब है। दूसरे इसका पढ़ना सआदत अर्थात नेकी भी है। अल्लाह तआला के इस कलाम (वाणी) कुरआन मजीद का रमज़ानुल मुबारक से बहुत विशेष संबंध है। इसी माह–ए–मुबारक में वह नाज़िल (उतारा) किया गया। उसकी ख़ासियत का ख़ास तौर पर ज़िक्र किया गया:

"रमज़ान का महीना वह है जिसमें कुरआन मजीद उतारा गया जो लोगों के लिए हिदायत (नसीहत) है और उसमें राहयाबी और (हक़ व बातिल में) इम्तियाज़ की खुली निशानियां हैं।"

और रमज़ान के महीने से कुरआन मजीद का संबंध भी बहुत ज़ाहिर होता है। इस माह–ए–मुबारक में वह ख़ूब पढ़ा जाता है। अल्लाह तआला की तरफ़ से उसके बहुत पढ़े जाने की व्यवस्था है। ख़ास तौर पर नमाज़ों में, और तरावीह की नमाज़ तो शायद ख़ास तौर पर इसीलिए रखी गयी है। वह परवर दिगार–ए–आलम का कलामे मुक़द्दस (पवित्र वाणी) है। इसलिए इसका पढ़ना भी इस्लामी इबादत है। तरावीह को अल्लाह तआला ने कुरआन मजीद की हिफ़ाज़त का एक बड़ा ज़रिया बनाया है। इसकी वजह से कुरआन से संबंध बहुत बढ़ जाता है। अगर तरावीह न होती तो कुरआन मजीद पर तव्वजो रमज़ान में इतनी ज़्यादा न होती। इसी तरावीह का नतीजा है कि पूरी दुनिया में कुरआन मजीद के हज़ारों–लाखों हाफ़िज़ कुरआन पाक को सुनाते हैं, जिसकी वजह से कुरआन पाक की हिफ़ाज़त की बेहतरीन व्यवस्था है।

रमज़ानुल मुबारक में तरावीह का अमल (कार्य) एक फ़ायदेमन्द और दीनी तक़वियत (धार्मिक शक्ति) का एक बेहतरीन साधन है तथा इसका कुरआन मजीद से बहुत गहरा संबंध है। इसलिए कुरआन मजीद के सुनने और सुनाने का एक ऐसा सुनहरा मौक़ा मिलता है, जिससे सुनने और सुनाने वाले दोनों ही बड़ा फ़ायदा उठाते हैं और अल्लाह के कलाम (ईशवाणी) को सुनने और सुनाने में अल्लाह की रज़ा की जो प्राप्ति होती वह दीनी उन्नति और स्वीकृति का मूल्यवान साधन है। इसी के साथ–साथ इस काम से कुरआन मजीद की सुरक्षा के काम को बड़ा सहयोग मिलता है और ईमान वालों को इस सहयोग का ज़रिया बनने का सवाब मिलता है। जिसकी हिफ़ाज़त का वास्तव में अल्लाह तआला ने वादा किया है:

"हम ही ने इस नसीहत (नामे) को उतारा है और यक़ीनन हम ही इसकी हिफ़ाज़त करने वाले हैं।"

मसले के अनुसार से तरावीह एक सुन्नत का काम है और वह जमाअत के साथ किया जाता है और रमज़ान की विशेषता में दाख़िल है। इस तरह वह बहुत अहमियत भी रखती है। दीन में इसकी अहमियत और हक़ीक़त पर हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह0) ने "अरकाने अरबा" में जो लिखा है, वह इसके विभिन्न पहलुओं पर अच्छी रोशनी डालता है, वे लिखते हैं:

"अल्लाह तआला ने इस उम्मत में तरावीह की हिफ़ाज़त और उसके ज़्यादा से ज़्यादा पढ़ने का जज़्बा भी पैदा किया है। तरावीह की नमाज़ रसूलुल्लाह (स0अ0) से साबित है, लेकिन आपने तीन दिन पढ़कर उसको इसलिए छोड़ दिया था कि कहीं यह उम्मत पर फ़र्ज़ न हो जाए, और मशक़्क़त का कारण हो।"

इब्ने शहाब (रह0) (ज़हरी) रिवायत करते हैं कि मुझसे अरवा (इब्ने अलज़ुबैर) ने बताया, वे कहते हैं: मुझे हज़रत आयशा (रज़ि0) ने ख़बर दी कि रसूलुल्लाह (स0अ0) एक बार देर से रात में अपने घर से निकले और

मस्जिद में नमाज़ पढ़ी और आप के साथ कुछ और लोगों ने भी नमाज़ पढ़ी। जब सुबह हुई तो लोगों ने उसके बारे में बातचीत शुरू कर दी और बहुत से लोग जमा हो गए। दूसरे रोज़ जब आपने नमाज़ पढ़ी तो सबने आपके साथ नमाज़ पढ़ी, फिर सुबह हुई और उसका चर्चा हुआ। तीसरी रात नमाज़ियों की संख्या बहुत बढ़ गई।

रसूलुल्लाह (स0अ0) बाहर तशरीफ़ लाए और नमाज़ पढ़ी। जब चौथी रात आयी तो नमाज़ियों की अधिक संख्या के कारण मस्जिद में जगह न रही। यहां तक कि फज्र की नमाज़ के लिए तशरीफ़ लाए और नमाज़ पढ़ने के बाद लोगों की ओर सम्बोधित हुए और कहा कि तुम लोगों की मौजूदगी मुझसे छिपी हुई नहीं है, लेकिन मुझे डर हुआ कि यह नमाज़ तुम पर फ़र्ज़ न कर दी जाए, फिर तुम इससे आजिज़ हो जाओ। फिर रसूलुल्लाह (स0अ0) की वफ़ात हो गई और यही सूरत रही। आपके बाद सहाबा किराम (रज़ि0) इस पर अमल करते रहे और इस उम्मत ने विभिन्न देशों और ज़मानों में इसकी पूरी सुरक्षा की। यहां तक कि तरावीह की नमाज़ तमाम अहल–ए–सुन्नत व सालिहीन–ए–उम्मत की पहचान बन गई। इसके अलावा इससे कुरआन के हिफ़्ज़ (ज़बानी याद करना) में भी बड़ी मदद मिली। इस सिलसिले में बहुत से वह देश जो इस्लामी केन्द्र से बहुत दूर थे, अल्लाह तआला की विशेष कृपा रही। अतः हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में तरावीह और ख़त्म कुरआन का जितना चलन है और आम और ख़ास सब उसे पसंद करते हैं। यह बात इस दर्जे में किसी और देश में नहीं मिलती। यहां मुहल्ले की छोटी–छोटी मस्जिदों में भी तरावीह की व्यवस्था की जाती है और कम से कम एक ख़त्म ज़रूर होता है। बड़ी और ख़ास मस्जिद में कई–कई खत्म होते हैं और इसमें कोई शुब्हा नहीं कि इस सुन्नत की पैरवी की वजह से हाफ़िज़ों की संख्या में बहुत नुमायां बढ़ोत्तरी हुई है और रमज़ान की ख़ातिर पूरे साल कुरआन मजीद के दौर का नियम बन गया और ऐसे–ऐसे हाफ़िज़ पैदा हुए, जो हैरतअंगेज़ योग्यता रखते थे, और हिफ़्ज़–ए–कुरआन के विभाग में असाधारण क्षमता के मालिक थे। (अरकान–ए–अरबा: 268–269)

हज़रत शेखुल हदीस मौलाना ज़करिया कांधलवी ने फ़ज़ाएल–ए–रमज़ान में बैहिक़ी व इब्ने खुज़ैमा के हवाले से हज़रत सलमान फ़ारसी से मरफ़ूअन नक़ल किया है कि आख़िरी शअबान में रसूलुल्लाह (स0अ0) ने सहाबा को ख़िताब फ़रमाया और कहा कि:

"तुम्हारे ऊपर एक महीना आ रहा है, जो बहुत अज़ीम, बरकत वाला महीना है, इसमें एक रात है शब–ए–क़द्र जो हज़ारों महीनों से बढ़कर है। अल्लाह तआला ने उसके रोज़े को फ़र्ज़ किया है और उसके रात के क़याम यानि तरावीह को सवाब की चीज़ बताया है।"

तरावीह के सिलसिले में उम्मत का जो तरीक़ा रहा है और इमामों ने इसकी जो व्यवस्था की है, इससे उसका अपना महत्व मालूम होती है कि उसका व्यवस्था रात के शुरूआती हिस्से में इशा की नमाज़ के साथ की गई और तहज्जुद का रात के आख़िरी हिस्से में। तरावीह की नमाज़ जमाअत से हज़रत उमर बिन अल ख़त्ताब (रज़ि0) ने बीस रकआत सहाबा–ए–रसूल (रसूलुल्लाह स0अ0 के सहचर) से विचार–विमर्श करके एवं उनकी सहमति से तय की और हज़रत अबी इब्न–ए–काब जैसे महान सहाबी से इमामत करवायी और उन्होंने इसमें कुरआन मजीद सुनाया। इस तरह सहाबा (रज़ि0) ने अमली तौर पर सहमति प्रकट की और इसकी वजह से यह सुन्नत हर तरफ़ आम हो गयी और यह नेकी व सवाब हज़रत उमर (रज़ि0) के हिस्से में आयी कि इस महान सुन्नत का आरम्भ उनके द्वारा हुआ और कुरआन मजीद ज़्यादा से ज़्यादा पढ़ने का यह ज़रिया बनी और हाफ़िज़ों के लिए बड़ी मुबारक साबित हुई कि वे इसके ज़रिये कुरआन मजीद को अपने सीने में सुरक्षित रखते हैं। सहाबा के बाद ताबईन और फिर तबअ ताबईन और दूसरे इमामों व मुहद्दिसीन, उलमा और फ़ुक़्हा और दीन पर अमल करने वालों ने इसकी व्यवस्था की और हरमैन–शरीफ़ैन (मक्का व मदीना) में भी उस वक़्त से लगातार तरावीह पढ़ी जाती है।

कुरआन मजीद पूरा किये जाने का काम जारी है और कुरआन मजीद पूरा होने के बाद यह तरीक़ा बरक़रार रहता है। इस तरह यह दो अलग–अलग सुन्नते भी हुईं। .....(शेष पेज 15 पर)

यूरोप की आन्तरिक समस्याओं पर एक नज़र

मौलाना सैय्यद वाज़ेह रशीद हसनी नदवी

पश्चिमी सभ्यता व संस्कृति की उन्नति व श्रेष्ठता, पश्चिम के राजनीतिक वर्चस्व और उसकी शिक्षा व प्रशिक्षण व्यवस्था के कारणवश पतनरहित व आलोचनारहित प्रतीत होती है और माना जाता है कि यूरोप अपनी समस्याओं का समाधान करने के बाद पूरी दुनिया के नेतृत्व की शक्ति व क्षमता रखता है। लेकिन यदि यूरोप की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति का वास्तविक परीक्षण किया जाए तो ऐसी तस्वीर सामने नहीं आती है जिससे भविष्य में उससे कुछ आशांए की जा सकें, बल्कि जो तस्वीर सामने आती है वह पूरब की तस्वीर से बहुत अधिक भिन्न नहीं है।

जिन देशों पर यूरोप के प्रभाव अधिक कार्यरत रहे हैं वहां व्यक्तिगत लाभ और मुसीबत के कारणवश अत्याचार व अधिकारों का हनन बढ़ता जा रहा है। क्षेत्र व जाति के आधार पर नफ़रतें परवान चढ़ रही हैं। रंग व नस्ल और भाषा व सभ्यता के झगड़े हो रहे हैं और कमज़ोर वर्ग ताक़तवर वर्ग के अत्याचार का निशाना बना हुआ है। कमज़ोरों और अल्पसंख्यकों का ज़बरदस्त शोषण हो रहा है। इस प्रकार की जिहालत व अज्ञानता का प्रभाव जीवन के हर भाग में प्रकट हो रहा है और वह जीवन व्यवस्था समाप्त होती जा रही हैं जिसमें मनुष्य व्यवहारिक व सामाजिक जीवन व्यतीत करता था जिससे एक सामाजिक स्वभाव बनता था। दुनिया के हर हिस्से में आज भेदभाव के प्रवर्तक सर उठा रहे हैं। पूरी दुनिया में कशमकश, भेदभाव, पक्षपात और आपसी झगड़ों का दौर चल रहा है और कोई भी ऐसी ताक़त नहीं है जो उन पर नियन्त्रण पा सके और उनको क़ाबू में कर सके।

क्षेत्र तथा जाति के आधार पर दुनिया बटती जा रही है, जिसके परिणामस्वरूप एक ही देश विभिन्न देशों में बटता जा रहा है तथा एक ही जाति के विभिन्न गुट आपस में युद्ध करने पर उतारू हैं। इसमें धार्मिक व वैचारिक पक्षपात भी राजनीतिक रूप से सम्मिलित हो गया है और अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु बल का प्रयोग आम हो रहा है। सोच–समझ एवं धैर्य व धीरज का दायरा तंग होता जा रहा है। यह सारे कारण व साधन पश्चिमी आन्दोलनों से लिये गये हैं।

सोवियत यूनियन के बिखरने के बाद कम्यूनिस्ट एकता का पतन हो गया, जो पश्चिमी यूरोप के शोषण की राह में रुकावट था। लेकिन उसके कारण से दुनिया दो बड़े संगठनो में बटी हुई थी। दोनों संगठन ने अपनी सुरक्षा के लिए हथियारों के भण्डारण व जासूसी तथा विनाशकारी कार्यवाहियों में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया और पूरी दुनिया में आपसी कशमकश और कट्टरता के वातावरण की स्थापना कर दी। उन दोनों गुटों में जो देश शामिल थे वे आपस में एक दूसरे के मित्र थे और दूसरे गुट के शत्रु थे। यह सभी देश जो किसी न किसी संगठन से जुड़े थे और जिनके लाभ मिश्रित थे और जिनकी आन्तिरक व बाह्य सलामती सुरक्षित थी, अलग होने के बाद नये झगड़ों, आपसी फूट और आन्तरिक अव्यवस्था एवं गड़बड़ी तथा अराजकता का सामना कर रहे हैं। अब हर ब्लाक विभिन्न ब्लाकों में बंट गया है और अन्दरूनी कशमकश में और बढ़ोत्तरी हो गयी है और दूसरे देशों में अव्यवस्था व कशमकश पैदा करने को अपनी सलामती और तरक़्क़ी का ज़रिया समझते हैं।

इन मानवीय, सांस्कृतिक, व्यापारिक, शैक्षिक और धार्मिक श्रेष्ठता, रंग व नस्लभेद, क्षेत्रवाद और जातिवाद के झगड़ों और पक्षपातपूर्ण रूझानों का हर व्यक्ति अनुभव कर सकता है जो वर्तमान समय की परिस्थिति का ज्ञान रखता हो। वह यदि किसी एक देश के विभिन्न वर्गों व तत्वों से विचार–विमर्श करे तो देखेगा कि एक देश के लोग अलग–अलग परिधि का चक्कर काट रहे हैं तथा वे भाषा, सभ्यता व संस्कृति, रंग व नस्ल, रक्षाशक्ति और व्यापारिक व आर्थिक आधार पर विभिन्न वर्गों में बटे हुए हैं। यह विभिन्नता पूरब व पश्चिम दोनों जगह पायी जाती है, जिनसे स्वयं यूरोप और विकसित देश सुरक्षित नहीं। अतीत में जो कुछ यूगोस्लाविया, अलबानिया, मक़दूनिया, इन्डोनेशिया, इयूथोपिया, सूडान और सोमालिया में घटित हुआ तथा त्यूनिस, लीबिया, इराक़, सीरिया में यदि कशमकश है तो यूरोप और बिट्रेन के कई देशों में भी जातिवादी व नस्लवादी रूझान बढ़ रहे हैं। इन रूझानों का कारण यूरोप का वह पक्ष है जो उसने अपने राजनीतिक व सामाजिक लाभों के कारण अपनाया है तथा स्वतन्त्रता तथा लक्ष्य प्राप्ति के लिए हर प्रकार के साधनों का प्रयोग

का नज़रिया है। अब यह दुविधा स्वयं यूरोपियन देशों व अमरीका में जन्म ले रही है। जो लोग पश्चिमी दुनिया के हालात पर नज़र रखते हैं वे भलिभांति जानते हैं कि यूरोप के विभिन्न देशों में नस्लवाद व जातिवाद के रूझान बढ़ रहे हैं। यह पुराने पूंजीवादी देश हैं और हर एक के अपने–अपने लक्ष्य है और अपने–अपने निजी लाभों व उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उनमें रेस जारी है। यही जातिवादी लाभों का झगड़ा अतीत में कई युद्धों का कारण बन चुका है और आज फिर जातिवादी लाभ व उद्देश्यों हेतु पूरी दुनिया में अव्यवस्था तथा अराजकता फैलती जा रही है। बड़े देश जो आर्थिक व रक्षात्मक सहायता देने की क्षमता रखते हैं, वे छोटे देशों के प्रति जो उनकी सहायता के मोहताज हैं, शत्रुओं जैसा व्यवहार करते हैं।

यूरोप को यह भलिभांति मालूम है कि पृथकता व अव्यवस्था तथा मतभेद व गड़बड़ी के यह बीज उसने स्वयं बोये हैं। वह यह भी जानता है कि यही झगड़ा पूर्व में खून–ख़राबे का कारण बन चुका है।

यूरोप में इन राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा नस्लवादी झगड़ो के साथ–साथ ईसाई रूढ़िवादियों का एक शक्तिशाली गुट भी कार्यरत है। इसको नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता है और यह गुट अमरीका, जर्मनी, बिट्रेन, फ़्रांस, इटली व स्पेन बल्कि हर यूरापीय देश में जबरदस्त ताक़त व प्रभाव तथा रसूख रखता है। यूरोप इस गुट को इस्लाम और मुसलमानों से युद्ध के लिए इस्तेमाल करता रहा है और इसके लिए हर संभव साधन उपलब्ध कराता रहा है, ताकि वह बाहिरी दुनिया में अपनी कार्यवाहियां जारी रख सके। लेकिन जो संस्थाएं ईसाई मिशनरियां तैयार करती थीं अब वे भी रूढ़िवादिता की शिक्षा दे रहे हैं और अब एक ऐसी शक्ति के उदय के लक्षण दिखाई देने लगे हैं जो राजनीतिक नेतृत्व से विरोधाभासी हो सकती है। नवजवानों में अपनी प्यास बुझाने, मन को सुकून पहुंचाने और शोर–शराबे वाले जीवन से उकता जाने और बेचैनी के इलाज के ग़रज़ से और दिल का सुकून पाने के साधन प्राप्त करने का रूझान बढ़ने लगा है तथा जैसे–जैसे पूर्वी देशों के धर्मों का असर व प्रभाव बढ़ रहा है, यह रूझान भी बढ़ता जा रहा है। इसके लक्षण अक्सर प्रकट होते रहते हैं।

कुछ अर्से पहले कट्टरवादी धार्मिक गिरोह ने अमरीका में सरकार को चैलेंज किया और फिर आत्महत्या कर ली। इस प्रकार के विचारों वाले गिरोह यूरोप के हर देश में पाये जाते हैं। यूरोप में ऐसे नवजवानों की संख्या बहुत अधिक है जिनमें भौतिकता के विरुद्ध प्रतिक्रिया पैदा हो रही है। इस्लामिक रूढ़िवादिता के ख़तरे को बढ़ा–चढ़ा कर पेश किये जाने से इसमें बढ़ोत्तरी हो रही है।

यूरोप में आपसी खींचतान के बहुत से कारण हैं, उनमें से एक कारण यहूदियों का जीवन के हर भाग पर वर्चस्व है जिससे ग़ैर यहूदी गुटों में बेचैनी और कठोर प्रतिक्रिया उत्पन्न होनी आरम्भ हो गयी है और इस यहूदी लाबी के वर्चस्व से छुटकारा पाने के लक्षण महसूस किये जा रहे हैं।

इसके अतिरिक्त यूरोप के गोरों व कालों के मध्य झगड़ा बढ़ रहा है। दूसरी ओर यूरोप में पूरी दुनिया पर अमरीकी वर्चस्व के ख़िलाफ़ प्रतिक्रिया शुरू हो गयी है। अमरीका से मदद लेने वाले देश भी अमरीकी वर्चस्व को नापसंद करते हैं।

जब से पूर्वी देशों पर यूरोपीय साम्राज्य का आरम्भ हुआ है तब से यूरोप अपने देश की ख़ामियों, बुराइयों और कमज़ोरियों से नज़रे चुराने तथा दूसरे देशों की कमियों को तलाश करने का आदी हो गया है। अतः कोई भी विशलेषक यूरोप की वर्तमान सभ्यता व संस्कृति की बुराइयों व कमियों पर और यूरोप को इस समय जिन आन्तरिक ख़तरों का सामना है उन पर भी कुछ नहीं बोलता है और न ही कोई टिप्पणी करता है, बल्कि अपना सारा ध्यान बाहरी दुनिया पर रखता है। जिसका परिणाम यह है कि आन्तकिर बीमारियां बढ़ती जा रही हैं और उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं है।

यूरोपीय सभ्यता व संस्कृति के आधार ही जीवन के निश्चित नियमों, उसूलों तथा रस्मों और मूल्यों के ख़िलाफ़ विद्रोह पर हैं। धार्मिक रीतियों व मूल्यों के ख़िलाफ़ विद्रोह के परिणामस्वरूप वहां दो रूझान पैदा हो गये हैं। नवजवानों का एक गिरोह ऐसा है जो सन्सासियों की भांति जीवन व्यतीत करना चाहता है। दूसरा गिरोह वह है जो ऐसा जीवन व्यतीत करना चाहता है जिसमें हर प्रकार की स्वतन्त्रता हो और अपने धार्मिक रीति–रिवाजों का लिहाज़ न करना पड़े। इस प्रकार यूरोपियन समाज में खुला विरोधाभास पाया जा रहा है। इस समाज के लोग, पुरुष व स्त्री दोनों जानवरों जैसा जीवन व्यतीत करना चाहते हैं।

इस प्रकार के बहुत से नवजवान अपनी सभ्यता व संस्कृति से विद्रोह करके पूर्वी देशों का सफ़र कर रहे हैं और देवालयों या होटलों अथवा अश्लीलता के अड्डों पर जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इस प्रकार के दृश्य कोई ढके–छिपे नहीं है बल्कि हर बड़े शहर में इसका अनुभव किया जा सकता है और नवजवानों का एक गिरोह ऐसा भी है जो चोरी, डकैती, हत्या व लूटपाट जैसे संगीन अपराधों में लिप्त है। नवजवानों का यह गिरोह अमीरों को बन्दी बना लेता है और अपनी मांगे न पूरी होने की स्थिति में उनकी हत्या कर देता है। अमरीका और फ़्रांस के अन्दर नवजवानों में जुर्म का रूझान इतना बढ़ गया है कि घूमने–फिरने पर पाबन्दी लग गई है। शांतिप्रिय लोग घरों से बाहर निकलने में घबराते हैं। औरतों व कमसिन बच्चों पर अत्याचार साधारण बात है।

भौतिकता व सैन्य शक्ति यूरोप का वह आख़िरी हथियार है जिससे यूरोप अपना हौलनाक व घिनावना चेहरा छुपाए हुए है तथा भौतिक व सैन्य शक्ति के ही द्वारा इन रूझानों व ख़तरों पर उसने पर्दा डाल रखा है। जो इसके अस्तित्व के लिये ख़तरा पैदा कर रहे हैं। लेकिन नवयुवकों का अपराध का आदी हो जाना और हत्या व लूटपाट तथा विनाशकारी कार्यों से आनन्दित होना, यह वे चीज़ें है जिनसे साबित हो जाता है कि अमन व सलामती और खुशहाल जीवन की प्राप्ति में बुरी तरह नाकाम हो गया है और यह भी साबित हो जाता है कि यूरोप अपनी मर्ज़ी व इच्छानुसार अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने में असफल हो गया है। बहुत सी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को हल कराने में असफल हो जाने के कारणवश और आपस में झगड़ने वाली शक्तियों को हिंसा व अत्याचार से दूर रखने में बेबस व असफल हो जाने के कारणवश यूरोप का पूरी दुनिया पर जो रोब व दबदबा था वह समाप्त होता जा रहा है। जब यह पृथक तत्व एक होकर शक्तिशाली हो जाएंगे तो सैन्य शक्ति यूरोप को बचा नहीं पायेगी, जैसा कि सैन्य शक्ति सोवियत यूनियन को बचाने में नाकाम रही थी।

संयुक्त राष्ट्र अमरीका में मानवाधिकार के उल्लंघन और अमरीकी अपराधों से संबंधित कुवैत से प्रकाशित होने वाली साप्ताहिक पत्रिका "अलमुजतमा" में एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी। उसके कुछ महत्वपूर्ण आंकड़े प्रस्तुत किये जाते हैं ताकि यूरोपीय सभ्यता व संस्कृति से जो लोग प्रभावित है और अमरीका की उन्नति का राग अलापते रहते हैं वे अंदाज़ा करें कि उनका प्रिय अमरीका मानवाधिकारों के हनन में व अपराध करने में कहां तक पहुंच गया है।

32 मिलियन अमरीकी गरीबी रेखा से नीचे का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। 12 मिलियन ऐसे हैं जिनके रहने–सहने व खाने–पीने का कोई ठिकाना नहीं, कोई व्यवस्था नहीं। 21 मिलियन अशिक्षित हैं। पढ़ना–लिखना बिल्कुल नहीं जानते। केवल 50 मिलियन अमरीकियों को वोट देने का अधिकार प्राप्त है, जबकि अमरीकियों की सामूहिक आबादी 205 मिलियन है। अमरीकी राष्ट्रपति के पद पर आसीन होने का अधिकार केवल अमीरों को है। मानवाधिकारों का खुलेआम हनन हो रहा है कि 01 मिलियन बच्चों का हाल लेने वाला कोई नहीं है। 01 मिलियन अमरीकी बच्चे देश से बाहर दर–बदर की ठोकरें खा रहे हैं और 13 मिलियन बच्चे गरीबी रेखा से नीचे जीवन व्यतीत कर रहे हैं। हर साल पांच हज़ार बच्चों की हत्या की जाती है। जो गिरोह औरतों और बच्चों को बन्दी बनाकर ले जाते हैं, वे सालाना सात अरब डालर कमाते हैं। ताज़ा आंकड़ो के अनुसार 200 मिलियन प्राईवेट अस्लहा सेक्टर हैं जबकि एक लाख से अधिक असलहा बेचने वाली रजिस्ट्रड दुकानें हैं। एक अमरीकी एजेंसी की सालाना रिपोर्ट से पता चलता है कि एक साल में सत्तर हज़ार असलहे प्रयोग किये जाते हैं उनमें से पचास हज़ार असलहों का प्रयोग विदेशियों पर हमला करने के लिए होता है और बाक़ी चोरी, डाका, हत्या व लूटपाट जैसे अपराधों को अंजाम देने में प्रयोग किया जाता है।

रूस, फ़्रांस और स्पेन में अपराधों का अनुपात इससे कहीं अधिक है। इसके अतिरिक्त व्यवहारिक मूल्यों का हनन, हिंसा व अत्याचार राष्ट्रीय स्तर पर हो या व्यक्तिगत जीवन में हो वह खुदा के अज़ाब को दावत देने वाला काम है और इससे कम अनुपात में होने वाली घटनाएं अतीत में कई क़ौमों के पूर्ण रूप से तबाही का कारण बन चुकी हैं। जो इतिहास के पन्नों में दर्ज है। सबसे गंभीर बात यह है कि इन बुराइयों को क़ानूनी रूप दे दिया गया है और इसके विरोध को क़ानून तोड़ना और सभ्यता विरोधी समझा जाता है।

नेक कामों में जल्दी और दृढ़ता

मौलाना अब्दुल्लाह हसनी नदवी (रह०)

आमाल (कर्म) की पाबन्दी बहुत अहम चीज़ है। चाहे इन्सान के आमाल कम हों या ज़्यादा हों। इसलिए कि आमाल की हैसियत हक़ीक़त में लक्षण अथवा पहचान की है। यानि आमाल अस्ल नहीं हैं बल्कि अल्लाह की रज़ा को पाने का एक ज़रिया है। अल्लाह तआला की नेमतें (उपकार) इतनी ज़्यादा हैं कि उन नेमतों का शुक्र कोई अदा कर ही नहीं सकता और क्योंकि शुक्र की एक शक्ल आमाल है अतः अगर कोई शख़्स नेमत के मुक़ाबले में आमाल अपनाना चाहे तो नहीं कर सकता। इसलिए अगर कोई यह समझता है कि आमाल की वजह से जन्नत मिलेगी तो यह नामुमकिन है। बल्कि आमाल के करने का हुक्म इसलिए दिया गया है ताकि मालूम हो जाए कि यह बन्दा खुदा को मानने वाला और खुदा की मानने वाला है या नहीं है। अर्थात आमाल से खुदा की बन्दगी का इज़हार होता है। इसलिए अल्लाह तआला ने इन्सान को इन्हीं आमाल का जवाबदेह किया है जिनको करना भी संभव हो। यानि उन आमाल का हुक्म दिया है जिनके बारे में कोई यह नहीं कह सकता है कि हमारे अन्दर उनको पूरा करने की योग्यता नहीं है। अर्थात आमाल की बुनियाद पर जन्नत नहीं मिलेगी बल्कि आमाल लक्षण के तौर पर हैं जो उनको करेगा वह जन्नत पायेगा और अल्लाह तआला उसको जन्नत का सर्टीफिकेट दे देगा। जिसको यूं समझा जा सकता है कि जिस तरह जहाज़ से सामान जाता है तो उसको जहाज़ पर रखने से पहले मशीन से चेक किया जाता है, फिर निशान लगाया जाता है जो कि इस बात की पहचान है कि यह सामान पास हो चुका है लेकिन इसके अन्दर कुछ शर्तें रहती हैं कि कौन सा सामान लेकर जाया जा सकता है और कौन सा सामान नहीं ले जाया जा सकता है। बिल्कुल उसी तरह अल्लाह तआला ने भी लिमिटेड मामला रखा है और जो चीज़ें मना हैं उनकी निशानदेही भी कर दी है ताकि उसकी वजह से पकड़ न हो जाए। लिहाज़ा अगर कोई शख़्स ही आमाल के साथ जाएगा तो उसके आमाल पर इजाज़त का निशान लग जाएगा और उसको जन्नत मिल जाएगी।

कुरआन मजीद में यहूद व नसारा की तरफ़ यह इशारा किया गया है कि उनके दिल ज्यादा दिन गुज़रने से सख़्त हो गये हैं और दीनी कामों पर अमल न करने से उनके दिल ग़ाफ़िल हो गये हैं। इसलिए उन्होंने अपनी मनमानी शुरू कर दी है। अर्थात उन्होनें पूरे दीन का हुलिया ही बिगाड़ दिया है। वाक़्या यह है कि अगर उन्हीं के अनुपात में आज मुसलमानों की ज़िन्दगी को देखा जाए तो मालूम होगा कि उन्होंने भी दीन का हुलिया बिगाड़ रखा है और कुरआनी शिक्षाओं को पीठ के पीछे डालकर अलग–अलग तरह की खुराफ़ातो में लगे हैं। इसीलिए हमेशा इस बात की ज़रूरत होती है कि हर चीज़ को साफ़ किया जाता रहे। अगर कोई शख़्स किसी कमरे को साफ़ न करे तो उसके अन्दर जाना मुश्किल हो जाएगा। लिहाज़ा इसी तरह ईमान पर भी गर्दा जम जाता है। और इसके अन्दर सच को स्वीकार करने की योग्यता समाप्त हो जाती हैं। इसीलिए कहा गया है कि ज़िक्र दिल को सैक़ल कर देता है। हदीस में आता है कि यानि अपने ईमान को "ला इलाहा इलल्लाह" के ज़रिये ताज़ा करो। अर्थात ज़िक्र और अल्लाह वालों के साथ बैठने से ईमान ताज़ा होता है। मगर सबसे पहले इन्सान की नियत का सही होना ज़रूरी है। वरना इसके बिना कुछ भी फ़ायदा हासिल होने वाला नहीं। बल्कि कभी–कभी अगर इन्सान की नियत ठीक नहीं होती है तो वह सीधे रास्ते से बहुत दूर भी चला जाता है। जिस तरह अगर जहाज़ की सुई अपनी निश्चित दिशा से ज़रा भी हट जाए तो वह बहुत दूर चला जाता है। इसीलिए कहा गया कि संतुलन के साथ चलना ज़रूरी है और आमाल की पाबन्दी करना भी ज़रूरी है क्योंकि किसी को नहीं मालूम कि उसको कौन सा अमल अल्लाह के यहां कुबूल कर लिया जाए। इसीलिए इन्सान को आख़िरी वक़्त तक इबादत करते रहना चाहिए। यहां तक कि मौत के वक़्त भी उसको अच्छी मौत नसीब हो। यानि ईमान और कलमे के साथ मौत आ जाए।

रिवायत से यह बात साफ़ तौर पर साबित है कि जिन आमाल को भी करना शुरू किया जाए उनकी पाबन्दी भी ज़रूरी हैं यहां तक कि हर हाल में करते रहना चाहिए। मरते–मरने करना चाहिए और करते–करते ही मरना चाहिए और मरते–मरते करने का मतलब यह है कि इन्सान को जिस तरह जवाबदेह बनाया गया है वह उतना ही काम मरते दम तक अंजाम दे और इन्सान को इन्हीं आमाल पर जवाबदेह बनाया गया है जिनको वह अदा कर सकता हो। मसलन आमाल में सबसे अहम चीज़ पांच वक़्त की नमाज़

है, जिसको हर शख़्स अदा कर सकता है। इसीलिए जो लोग नमाज़ अदा नहीं कर रहे हैं वह गोया खुदा की बग़ावत कर रहे हैं और जो लोग नमाज़ पढ़ रहे हैं वह अल्लाह के हुक्म पर अमल कर रहे हैं लेकिन इसके बाद जन्नत खुदा के फ़जल ही से मिलगी। अलबत्ता नमाज़ एक पहचान है कि इन्सान खुदा के हुक्मों पर राज़ी है। लिहाज़ा अगर हमारी यह अलामात सही हो जाए तो अल्लाह तआला के यहां जन्नत में जाने के लिए इन आमाल पर सही टिक लग जाएगी। इसीलिए नमाज़ का ज़्यादा से ज़्यादा ध्यान रखना चाहिए । यहां तक कि अगर काई खड़े होकर नमाज़ नहीं पढ़ सकता तो उसको चाहिए कि वह बैठकर नमाज़ पढ ले, वरना लेट कर नमाज़ पढ़ ले और अगर कभी छूट जाए तो उसकी क़ज़ा कर ले। अर्थात यह तमाम आसानियां अता फ़रमा दी गई हैं जिसका मतलब यह है कि आपके अन्दर अल्लाह ने नमाज़ पढ़ने की सलाहियत भी रखी है वरना खड़े होने पर ताक़त न होने के बाद इन्सान से नमाज़ को रफ़ा किया जा सकता था। लिहाज़ा अगर कोई शख़्स नमाज़ नहीं पढ़ता है तो यह उसकी अपनी कोताही होगी लेकिन नमाज़ का फ़रीज़ा किसी से हट नहीं हो सकता सिवाए चन्द अपवाद की स्थितियों के, मसनल पागल पर नमाज़ नहीं है, और ख़ास दिनों में औरतो पर नमाज़ माफ़ है इत्यादि। इसी तरह इसके अलावा भी जो बक़िया आमाल हैं वह भी अदा करना ज़रूरी है।

लेकिन आमाल के अन्दर यह बात ज़हन में रखना ज़रूरी है कि इन्सान आमाल के अन्दर संतुलन का ध्यान रखे कि शुरू में इन्सान को बहुत जोश सवार हो जिसकी वजह से ऐसे–ऐसे वज़ीफ़े भी शुरू कर दिये जाएं जिनका कोई सुबूत नहीं है तो यह दुरूस्त नहीं होगा। बल्कि संतुलन का रास्ता अख़्तियार करना बहुत ज़रूरी है और एकाएक इन्सान के अन्दर उबाल का आ जाना ग़लत है क्योंकि कभी–कभी इन्सान जज़्बात में आकर बह जाता है इसीलिए ऐसा करना मुनासिब नहीं होगा बल्कि सोच–समझकर करना ज़रूरी होगा। इसीलिए एक हदीस में फ़रमाया गया है कि अल्लहा को सबसे ज़्यादा वह अमल पसंद है जो हमेशा किया जाए चाहे वह थोड़ा ही हो क्योंकि उसकी वजह यह है कि अगर थोड़ा हमेशा किया जाए तो वह बहुत हो जाता है और जो बहुत किया जाए लेकिन एकदम से किया जाए तो वह ज़ाया हो जाता है जिसके लिए कछुवे और ख़रगोश के मुक़ाबले वाली मसल मशहूर है जिससे मालूम होता है कि कछुवा सुस्त रफ़्तार से चलने के बावजूद भी अपनी मंज़िल तक पहुंच गया था और ख़रगोश पीछे रह गया था। इसीलिए इन्सान को लगातार चलना चाहिए। इसका ख़ास असर होता है। यहां तक कि अगर किसी जगह पर लगातार एक बूंद पानी टपकता है तो उस जगह में कुछ दिनों के बाद एक सुराख़ हो जाता है लेकिन अगर इसी के मुक़ाबले में तूफ़ान आ जाए तो कुछ ही देर के बाद पूरी ज़मीन फिर ठी का हो जाती है। लिहाज़ इससे भी यह सबक़ लिया जा सकता है कि अगर हमेशा कोई काम किया जाए चाहे वह थोड़ा ही हो तो उसका असर भी असाधारण होगा। जैसे ज़िक्र की पाबन्दी है इससे भी दिल पर बड़ा असर पड़ता है। इसकी मिसाल ऐसी है कि जिस तरह जब उंगली में जख़्म हो जाता है तो आदमी इस ज़ख़्म के साथ सारे काम भी करता है लेनिक ज़ख़्म को नहीं भूलता है उसी तरह जो शख़्स ज़िक्र वग़ैरह की पाबन्दी करता है तो वह किसी भी काम में लगा हुआ हो अल्लाह को नहीं भूलता तो फिर उसको अल्लाह हमेशा याद रहता है। इसलिए जिक्र कराया जाता है। मगर इसके लिए पाबन्दी ज़रूरी है वरना उसका असर कुछ भी नहीं हो सकता है लेकिन अगर इन्सानी कमज़ोरी की बुनियाद पर कभी किसी से कोई मामूल बाक़ी रह जाए तो इसको बाद में भी पूरा किया जा सकता है और इसका सवाब भी वैसा ही जैसा वक़्त पर पढ़ने से हासिल होता है।

आमाल में संतुलन के अन्दर यह बात भी शामिल है कि इन्सान इबादात के साथ सदक़े का भी ध्यान रखे। जिस वक़्त इन्सान कमाने पर भी क़ुदरत रखता हो उस वक़्त का सदका ज़्यादा सवाब वाला है क्योंकि अगर इन्सान अपने आखिरी वक़्त में सदक़ा करता है तो वह माल उसका नहीं रहता बल्कि उसकी औलाद का हो जाता है और यह भी इन्सान का बहुत बड़ा धोख है कि इन्सान माल को अपना समझता है हालांकि जिस माल को उसने ज़िन्दगी भर बहुत मुहब्बत से कमाया था चन्द ही दिनों बाद वही माल उकसी औलाद की तरफ़ चला जाता है और इसी तरह आगे हस्तान्तरित होता रहता है। अर्थात किसी के पास माल नहीं रुकता जिससे समझ में आता है कि अस्ल मिल्कियत अल्लाह तआला ही की है और तमाम मख़लूक़ (प्राणीवर्ग) उसकी मोहताज है।

मगर अफ़सोस की बात है कि आज उम्मत का एक बड़ा तबक़ा नेक कामों में निहायत सुस्ती का रवैया अपनाता है और शर के हर काम को अपना कर्तव्य समझता है। जबकि यह बात उसके ईमानी तक़ाज़े के ख़िलाफ़ है।

(क्रमवार)

एकेश्वरवाद क्या है?

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

ज़मीन व आसमान का पैदा करने वाला

"आसमानों और ज़मीन को अदम (अनस्तित्व) से वजूद बख़्शने वाला है, उसके औलाद कहां हो सकती है जबकि उसके कोई बीवी नहीं है, हर चीज़ को उसने पैदा किया और वही हर चीज़ का ख़ूब इल्म रखता है, वही अल्लाह तुम्हारा रब है उसके सिवा कोई माबूद नहीं, हर चीज़ उसी ने पैदा की उसी की बन्दगी करो और वही हर चीज़ का कारसाज़ है।" (अलइनआमः 101–102)

इस आयत में एक प्रकार से ईसाईयों को खुलकर काट की जा रही है जो कहते थे कि हज़रत ईसा (मआज़ल्लाह) खुदा के बेटे हैं। अल्लाह कहता है कि उसकी कोई बीवी नहीं है तो उसका बेटा कहां से हो जाएगा। और बीवी और बेटे को जो झमेले हैं, उसके नतीजे में तो क्या कुछ होता है। आदमी कहां–कहां परेशान होता है। अल्लाह की ज़ात तो उन चीज़ों से पाक और बरी है। वह अकेले जो चाहता है फ़ैसले करता है। वह न किसी बेटे के दबाव में है न किसी बीवी के दबाव में। न उसकी कोई बीवी, न कोई बेटा, न कोई ऐसा कि वह उसकी बात मानने पर मजबूर हो जाए। तो वह जिसकी बात मानता है, प्यार में मानता है। हज़रत मुहम्मद (स0अ0) की जो शफ़ाअत होगी क़यामत में, वह आप (स0अ0) पर जो अल्लाह तबारक व तआला का करम है और मुहब्बत का इज़हार है, यह उसकी एक शक्ल है। ऐसा नहीं है कि आप अगर कह देंगे तो अल्लाह न करे अल्लाह मजबूर हो जाएगा। पिछले अंकों में यह बात थी कि आप चाहते थे कि अबू तालिब मुसलमान हो जाएं, लेकिन अल्लाह की मर्ज़ी नहीं थी, इसलिए मुसलमान नहीं हुए। मालूम हुआ कि होता वह है जो अल्लाह चाहता है, किसी के बस में कुछ नहीं।

अस्ल माबूद

"वही अल्लाह है उसक सिवा कोई माबूद (उपास्य) नहीं, वही जीता है और सब उसके सहारे जीते हैं, न उसको ऊंघ आती है और न नींद, जो कुछ आसमानों में है और जो कुछ ज़मीन में है सब उसी का है, कौन है जो बिना उसकी इजाज़त के उसके पास सिफ़ारिश कर सके, उनका अलगा–पिछला सब जानता है, उसके इल्म के किसी हिस्से का भी वे अहाता नहीं कर सकते मगर जितना वह चाहे, उसकी कुर्सी आसमानों और ज़मीन को समोए हुए है और उन दोनों की निगरानी उसको थकाती नहीं और वही बुलन्द व बाला और बड़ी अज़मत वाला है।" (सूरह बक़राः 255)

इस आयत में बताया जा रहा है कि वही तन्हा अल्लाह है। उसके सिवा कोई माबूद (उपास्य) नहीं। वही हयि व क़यूम (जीवित व सदा रहने वाला) है। न उसको ऊंघ आती है न नींद आती है। आसमानों और ज़मीन में जो कुछ है सब उसी का है। कौन ऐसा है कि उसके पास सिफ़ारिश कर सके जब तक कि उसकी आज्ञा न हो। यह समझने की चीज़ है। इस बोर में भी लोगों के अन्दर बहुत ग़लतफ़हमियां हैं। वे समझते हैं कि रसूलुल्लाह (स0अ0) जो सिफ़ारिश करेंगे उसमें आपको पूरा अधिकार है कि आप जो चाहें, जिसकी चाहें, सिफ़ारिश करें। इस आयत में यह बात साफ़ कर दी गई है कि अल्लाह तआला की इजाज़त से ही सिफ़ारिश होगी। ऐसा नहीं है कि जिसका जी चाहे वहां खड़ा हो जाए और सिफ़ारिश शुरू कर दे। सिफ़ारिश जो करेगा वह अल्लाह के हुक्म से करेगा। अल्लाह की इजाज़त से करेगा। अल्लाह तबारक व तआला अपने ख़ास बन्दों को यह इजाज़त देंगे, जिनमें सबसे बड़ा स्थान सरकार–ए–दो आलम (स0अ0) को हासिल है।

शफ़ाअत–ए–रसूल (स0अ0)

आपको बहुत सी शफ़ाअतों की इजाज़त मिलेगी। इसमें शफ़ाअत–ए–कुबरा भी है। जिसकी तफ़सील

हदीसों में आती है कि जब हिसाब–किताब पूरा हो जाएगा और लोग चाहेंगे कि जन्नत में दाख़िल हों, तो चूंकि इजाज़त नहीं होगी। लोग परेशान खड़े होंगे। तमाम लोग अपने–अपने नबियों के पास जाएंगे और कहेंगे कि आप अल्लाह से सिफ़ारिश कीजिए कि हमें जन्नत में दाख़िले की इजाज़त मिले। तो हर नबी माफ़ी चाहेगा। यहां तक कि सबसे सब अल्लाह के रसूल (स0अ0) के पास आंएगे और आकर कहेंगे कि आप हमारी सिफ़ारिश कर दीजिए कि अल्लाह हमें जन्नत में दाख़िल करे। आप फ़रमाएंगे कि हां मैं सिफ़ारिश करूंगा। मुझे इसका हक़ है। यह हक़ अल्लाह तआला आप (स0अ0) को अता फ़रमाएंगे। इस शिफ़ाअत–ए–नबवी (स0अ0) के बारे में ध्यान रहे कि यह नहीं होगा कि आप (स0अ0) आकर कहें: ऐ अल्लाह उन सबको जन्नत में दाख़िल कर दीजिए, जैसा कि लोगों का मानना है। बल्कि इसका तरीक़ा यह होगी कि आप जांएगे और सज्दे में पड़ जाएंगे। हदीसों में आता है कि ऐसे कलिमात–ए–हम्द (प्रशंसा के शब्द) अल्लाह की तरफ़ से दिये जाएंगे जो कभी न उसके पहले नहीं दिये गये और न ही उसके बाद दिये जाएंगे और आप (स0अ0) इन कलिमात–ए–हम्द से अल्लाह की प्रशंसा करेंगे। आजिज़ी करेंगे। सज्दे में गिरकर गिड़गिड़ाएंगे, फिर अल्लाह फ़रमाएगा कि:

"ऐ मुहम्मद! अपने सिर को उठाइये, मांगिये अता किया जाएगा, सिफ़ारिश कीजिए, आपकी सिफ़ारिश कुबूल की जाएगी।" (सही मुस्लिम: 501)

यह सिफ़ारिश की अस्ल शक्ल है। जब आप (स0अ0) अल्लाह के दरबार में आजिज़ी फ़रमाएंगे तो आपकी शिफ़ाअत होगी और अल्लाह तआला तमाम लोगों को जन्नत में दाख़िल फ़रमा देंगे। फिर आप (स0अ0) बहुत से गुनाहगारों की शफ़ाअत फ़रमाएंगे। लेकिन याद रहे कि बहुत से ऐसे लोग भी हैं जो शफ़ाअत से वंचित होंगे। एक हदीस में आता है कि आप हौज़–ए–कौसर पर होंगे। कुछ लोग आपके सामने से गुज़रेंगे। आप कहेंगे कि यह मेरी उम्मत के लोग हैं। मैं उनकी सिफ़ारिश करूंगा। तो कहा जाएगा कि नहीं, उन्होंने आप के बाद खुदा जाने क्या क्या नई चीज़ें ईजाद कर लीं। उनका आपसे कोई संबंध नहीं है। यह आपकी उम्मत में नहीं है। यह आपकी उम्मत में थे मगर निकल गये। यह उन खुराफ़ात और बिदअत का नतीजा है जो लोगों ने अपनी तरफ़ से अपना लीं। इसके नतीजे में वे आप (स0अ0) की शफ़ाअत से भी महरूम किये जाएंगे। हदीस के शब्द यह हैं:

"बहुत से ऐसे लोग मेरे पास पहुंचेग कि मैं उनको पहचानता होउंगा। लेकिन फिर उनके और मेरे बीच दूरी कर दी जाएगी। अतः मैं कहूंगा: यह लोग तो मेरे (उम्मती) हैं, तो जवाब दिया जाएगा: आपको नहीं मालूम कि उन्होंने आपके जाने के बाद क्या किया है, तो मैं यही कहूंगा कि ऐसे लोगों के लिए हलाकत है जिन्होंने मेरे बाद दीन में बदलाव कर दिया।" (सही बुख़ारी)

इससे मालूम हुआ कि शफ़ाअत–ए–रसूल (स0अ0) अल्लाह के हुक्म से होगी। अल्लाह तआला उसकी आप (स0अ0) को इजाज़त देंगे। तो उसके बाद फिर आप (स0अ0) शफ़ाअत करेंगे। इस सिलसिले में लोगों ने अजीब व ग़रीब सोच बना रखी है कि मानो अल्लाह तबारक व तआला कुर्सी पर गुस्से बैठा हुआ है। हर एक को जहन्नम में झोंकना चाहता है और मुहम्मद(स0अ0) सारी दुनिया के लिए रहमत हैं। बस आप खड़े हैं। मानों अल्लाह से झगड़ रहे हैं कि सबको जन्नत में दाख़िल कर दिया जाए। किसी को जहन्नम में न भेजा जाए। यह एक अजीब व ग़रीब विचार है कि अल्लाह को गुस्से वाला बताया जाता है और आप (स0अ0) को सरापा रहमत बताया जाता है। ध्यान रहे कि जिस तरह आप (स0अ0) सरापा रहमत हैं, यह आपकी रहमत अल्लाह ही ने पैदा की है। हदीस में आता है कि अल्लाह ने मुहब्बत के सौ हिस्से किये, एक हिस्सा दुनिया में भेजा। इरशादे नबवी (स0अ0) है:

"निसंदेह अल्लाह तआला ने रहमत को सौ हिस्सों में पैदा किया। फिर उसमें से रहमत के निन्यानवे हिस्से अपने पास रोक लिये और एक हिस्सा रहमत अपनी मख़लूक़ (प्राणियों) में दे दी। (सही बुख़ारी: 6469)

इसका नतीजा यह है कि इसी मुहब्बत के असर से

मां बेटे को चाहती है, बाप बेटे को चाहता है, सब एक दूसरे को चाहते हैं। अर्थात यह मुहब्बत का एक हिस्सा है, जिसके नतीजे में दुनिया में मुहब्बतें पायी जाती हैं और मुहब्बत के निन्यानवे हिस्से अल्लाह ही के पास हैं। अल्लाह के रसूल (स0अ0) ने बहुत सी ऐसी मिसालें बयान की जैसे कोई मां हो, वह अपने बेटे को आग में डालना गवारा नहीं करती। इसी तरह अल्लाह तआला ऐसा शफ़ीक़ है, अपने बन्दों पर ऐसा मेहरबान है कि वह अपने बन्दों को आग में डालना नहीं चाहता। लेकिन जब बन्दे खुद ग़लत रास्ते पर पड़ते हैं। खुदा से बग़ावत करते हैं और उससे सरकशी करते हैं तो अल्लाह तआला उनको जहन्नम में डालता है। अल्लाह तआला के निन्यानवे नाम हैं। उनमें से सबसे पहले उसका रहमत का गुण, रहमान व रहीम का ज़िक्र है। लिहाज़ा यह बहुत ही ग़लत सोच है कि वह ग़ज़बनाक है और सबको जहन्नुम में झोंक देगा। अल्लाह की महानता में एक प्रकार की गुस्ताख़ी है। इसलिए यह समझना चाहिए कि वह रहमान व रहीम है। अपने बन्दों पर मेहरबान है। उसकी मेहरबानी का नतीजा है कि वह आप (स0अ0) को शफ़ाअत के लिए खड़ा कर देगा कि आप सिफ़ारिश करते जाइये और जिन लोगों की आप सिफ़ारिश करेंगे उनकी बख़्शिश की जाती रहेगी। इसमें एक तरफ़ आप (स0अ0) के बुलन्द मक़ाम की तरफ़ भी इशारा है कि आपको क़यामत में भी नवाज़ा जा रहा है। आप एक सरदार की तरह खड़े हैं और सिफ़ारिश कर रहे हैं। दूसरी तरफ़ यह अल्लाह की रहमत का मज़हर भी है कि अल्लाह अपनी रहमत ही से आप (स0अ0) को सिफ़ारिश के लिए खड़ा कर रहा है और आप सिफ़ारिश कर रहे हैं। तो यह सोच सही होनी चाहिए कि वहां जो भी सिफ़ारिश करेगा वह अल्लाह की इजाज़त से करेगा। इसीलिए अल्लाह ने फ़रमाया कि कौन है जो अल्लाह के पास सिफ़ारिश कर सके सिवाए उसकी इजाज़त के। जो कुछ भी उनके आगे–पीछे है, वह सब जानता है और वे अल्लाह तआला के छोटे से छोटे इल्म का भी अहाता नहीं कर सकते। मगर सिवाए इतने हिस्से के जितने को अल्लाह चाहे। अपने नबियों को रसूलों को उतना हिस्सा देता है जितना चाहता है।

शेषः तरावीह – रमज़ान की अहम ख़ासियत ...

तरावीह में पूरा कुरआन मजीद सुनाया जाए और पूरा महीना तरावीह पढ़ी जाए। यद्यपि तरावीह की जमाअत सुन्नत–ए–किफ़ाया है, लेकिन इतनी अहम सुन्नत है कि मुहद्दिस–ए–जलील शेख़ अब्दुल हक़ मुहद्दिस देहलवी ने "मासबता बिस्सुन्नह" में लिखा है कि अगर किसी शहर के लोग तरावीह छोड़ दें तो उसके छोड़ने पर इमाम उनसे मुक़ातला करे। तरावीह व उसकी जमाअत ने वह विशेषता व श्रेष्ठता प्राप्त की है कि यह अहल–ए–सुन्नत वल जमाअत की पहचान बन गयी है। अतः रवाफ़िज़ (शिया हज़रात) इससे अदा नहीं करते हैं। शायद यही वहज है कि रवाफ़िज़ को आम तौर पर कुरआन मजीद याद नहीं होता क्योंकि तरावीह की ख़ास ताकीद हज़रत उमर (रज़ि0) के हवाले से मिलती है। इसलिए वह (शिया) उससे दिलचस्पी नहीं रखते। अतः वे उसके लाभ से वंचित हैं।

हज़रत उमर (रज़ि0) और दूसरे सभी सहाबियों ने मिलकर इस पर अमल किया। इसके मुबारक व अज़ीम होने के लिए केवल यही बात काफ़ी है।

यह हदीस है कि रसूलुल्लाह (स0अ0) ने फ़रमायाः

"बस तुममें से जो खुद ज़िन्दा रहे वह बहुत से इख़्तिलाफ़ात (विभिन्नताएं) देखेगा, तो उस वक़्त तुम पर मेरी सुन्नत ज़रूरी है, और हिदायत पाये हुए खुल्फ़ाए राशिदीन की सुन्नत, उसको मज़बूती से थामे रहना।"

इसलिए तरावीह और तहज्जुद का मामूल जो रमज़ान की रातों में रहा है, वह इसी माह–ए–मुबारक की ख़ासियत है। रमज़ान के बाद तहज्जुद की सुन्नत इसी तरह पूरे साल बाक़ी रहती है और यही वह अज़ीम सुन्नत है जिसका पूर्ति रसूलुल्लाह (स0अ0) ने सफ़र और हज़र दोनों में किया और जब इसमें किसी व्यस्तता या किसी कारणवश कमी रह गई तो सुबह उसकी कमी को पूरा किया। आपने इसका हुक्म नहीं दिया कि उम्मत दुश्वारी में न पड़े, लेकिन तरग़ीब दी और शौक़ दिलाया और उसकी फ़ज़ीलत बयान की। अतः तहज्जुद नेक लोगों की पहचान बन गई, यद्यपि यह अकेले पढ़ी जानी बेहतर है।

जुमा और ईद की नमाज़ के कुछ आदेश

मुफ्ती राशिद हुसैन नदवी

पिछले अंक में जुमा की नमाज़ के कुछ आदेश बयान किये गये थे। ज़रूरी मालूम होता है कि कुछ ऐसे मसलों का भी ज़िक्र कर दिया जाए जो ज़िक्र करने के क़ाबिल हैं:

खुत्बे के वक़्त चन्दा करना:

बहुत सी मस्जिदों में खुत्बे के वक़्त चन्दे का डिब्बा घुमाया जाता है। यह बात गुज़र चुकी है कि इमाम के खुत्बे के लिए निकलने के बाद नमाज़, बातचीत, यहां तक कि ज़िक्र वग़ैरह भी जायज़ नहीं है। (हिन्दिया)

खुत्बे के वक़्त लोगों की गर्दने फ़ांदना:

अगर आगे जगह खाली है और खुत्बा नहीं शुरू हुआ है तो एहतियात के साथ लोगों को तकलीफ से बचाते हुए आगे बढ़ना न सिर्फ़ जायज़ बल्कि अफ़ज़ल है। इसलिए कि इसको इमाम और मेहराब से निकटता हासिल हो जाएगी और बाद में आने वालों को पिछले हिस्से में जगह मिल जाएगी। लेकिन जब खुत्बा शुरू हो जाए तो अब पीछे जहां जगह मिल जाए वहीं बैठ जाना चाहिए। इसलिए कि गर्दने फ़ांदकर आगे बढ़ने की कोशिश करेगा तो एक तो लोगों को इससे तकलीफ़ होगी, दूसरे खुत्बे की हालत में इस तरह करने से अव्यवस्था की स्थिति पैदा होगी। (हिन्दिया)

इसीलिए हदीसों में इससे मना किया गया है जैसा कि गुज़र चुका है।

मुसाफ़िर का जुमा की इमामत करना:

मुसाफ़िर, मरीज़ जैसे जिन लोगों पर जुमा फ़र्ज़ नहीं होता है, उनका जुमा की नमाज़ पढ़ना जाएज़ है, इसी तरह अगर जुमा की नमाज़ में इसी तरह के लोग मौजूद हों जिन पर जुमा फ़र्ज़ नहीं है तो जमाअत की शर्त उनसे पूरी हो जाएगी और जुमा सही हो जाएगा। (शामी)

नमाज़े जुमा के लिए जाना किस अज़ान के वक़्त वाजिब है?

जुमा के लिए दो अज़ाने दी जाती हैं। एक जुमा की नमाज़ और खुत्बे से आधा घंटा या 20–25 मिनट पहले। दूसरी अज़ान खुत्बा शुरू होने से पहले मेम्बर के सामने दी जाती है। रसूलुल्लाह (स0अ0) के ज़माने में सिर्फ़ यही दूसरी अज़ान थी। पहली अज़ान का इज़ाफ़ा (बढ़ोत्तरी) हज़रत उस्मान (रज़ि0) के ज़माने में हुआ। अब सवाल यह है कि कुरआन मजीद में जो ज़िक्र है कि जुमा की अज़ान शुरू हो जाए तो अल्लाह के ज़िक्र की तरफ़ जल्दी करो और ख़रीद व बिक्री बन्द कर दो। इससे मुराद पहली अज़ान है या दूसरी?मुहक़्क़ीन (शोधकर्ताओं) के निकट इससे पहली ही अज़ान मुराद है जो खुत्बे से लगभग आधा घंटा पहले दी जाती है। इसलिए कि कुरआन मजीद में मुतलक़ तौर पर है कि जब जुमा के लिए अज़ान दी जाए तो अल्लाह के ज़िक्र की तरफ़ लपको और ख़रीब–बिक्री रोक दो और ज़ाहिर बात है कि यह अज़ान भी जुमा की अज़ान है। (शामी)

और अगर कई मस्जिदों में जुमा होता है तो मुहल्ले की जिस मस्जिद में जुमा पढ़ना है, उसकी पहली अज़ान का एतबार करके कारोबार बन्द करे और मस्जिद के लिए निकल पड़े। (अहसनुल फ़तावा)

खुत्बा कोई और दे और नमाज़ कोई दूसरा पढ़ाए:

अगर किसी वजह से खुत्बा कोई दूसरा शख़्स दे

और नमाज़ कोई दूसरा शख़्स पढ़ाए तो ऐसा करना जायज़ है लेकिन, बेहतर यही है कि जो ख़ुत्बा दे वही नमाज़ पढ़ाए। (शामी)

ईद की नमाज़ों के आदेश

ईदैन (ईदुल फ़ित्र व ईदुल अज़्हा) की नमाज़ें अल्लाह तआला ने ख़ुशी के इज़हार के लिए रखी हैं। दुनिया की हर क़ौम में ख़ास दिन होते हैं, जिनको वे त्योहार के तौर पर मनाते हैं। इसमें खेल–कूद व तरह–तरह की व्यर्थ के कार्य करते हैं। तो अल्लाह तआला ने इन्सानी स्वभाव का लिहाज़ करते हुए ईदैन की नमाज़ दी। इसलिए कि इन्सानी स्वभाव मांग करता है कि उसके लिए कुछ दिन ख़ुशी के हों। लेकिन उस ख़ुशी के अन्दाज़ को बदल दिया। इसमें बेकार के कामों की इजाज़त नहीं दी गई। बल्कि इस मौक़े पर भी हुक्म हुआ कि दो रकआत नमाज़ पढ़ी जाए और अल्लाह के दरबार में सर झुकाया जाए। बल्कि अगर हो सके तो उस रात को भी इबादत में गुज़ारा जाए। इसीलिए अबूदाऊद में हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ि0) से रिवायत है फ़रमाते हैं:

"नबी करीम (स0अ0) मदीना तश्रीफ़ लाए तो उनके दो दिन (यानि नवरोज़ और मेहरजान) थे, जिनमें वे खेलकूद किया करते थे। तो नबी करीम (स0अ0) ने फ़रमाया कि अल्लाह ने इन दो दिन के बदले में इससे बेहतर दो दिन तुमको अता किये हैं। ईदुल अज़्हा और ईदुल फ़ित्र।" (अबूदाऊद)

ईद के मसनून आमाल:

ईद के दिन निम्नलिखित काम करना सुन्नत है:

1– ग़ुस्ल (स्नान) करना।

2– मिस्वाक करना।

3– ख़ुशबू लगाना और जो कपड़े उपलब्ध हों उनमें से सबसे अच्छा पहनना।

4– ईदुल फ़ित्र की नमाज़ से पहले कोई मीठी चीज़ खाकर जाना। इसीलिए हज़रत अनस (रज़ि0) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (स0अ0) ईदगाह नहीं जाते थे जब तक कि कुछ खजूरें न खा लें और यह खजूरें आप (स0अ0) ताक़ अदद (विषम संख्या) में खाते थे। (बुख़ारी)

5– अगर सदक़ा फ़ित्र वाजिब हो तो ईद की नमाज़ से पहले अदा करना।

6– बक़रीद की नमाज़ के बाद आकर क़ुर्बानी का गोश्त खाना। इसीलिए हज़रत बुरैदा (रज़ि0) से रिवायत है फ़रमाते हैं:

"नबी करीम (स0अ0) ईदुल फित्र के दिन नहीं निकलते थे यहां तक कि खा लें और बक़रीद को नहीं खाते थे यहां तक कि नमाज़ पढ़ लें।" (तिरमिज़ी, इब्ने माजा)

7– ईद की नमाज़ ईदगाह में पढ़ना।

8– ईद की नमाज़ के लिए पैदल जाना। बिला ज़रूरत सवारी से न जाना।

9– ईद की नमाज़ों के लिए एक रास्ते से जाना और दूसरे रास्ते से वापस आना। इसीलिए हज़रत जाबिर (रज़ि0) से रिवायत है कि नबी करीम (स0अ0) जब ईद का दिन होता था तो रास्ता बदल दिया करते थे। (बुख़ारी)

10– ईदुल फित्र में धीरे–धीरे और ईदुल अज़्हा में तेज़ आवाज़ से आते–जाते हुए रास्ते में तकबीर यानी "अल्लाहु अकबर अल्लाहु अकबर लाइलाहा इल्लल्लाहु वल्लाहु अकबर अल्लाहु अकबर वलिल्लाहिल हम्द" पढ़ना। (शामी)

ईदैन की नमाज़ का हुक्म:

जब किसी बस्ती में जुमा क़ायम करने की शर्तें पायी जाती हों, (जिनका ज़िक्र तफ़सील के साथ किया जा चुका है यानि शहर या कस्बा हो यानि तीन हज़ार की आबादी का गांव हो) तो ईद की नमाज़ पढ़ना वाजिब है। (शामी)

ईदैन की नमाज़ का वक़्त एक–दो नेजे सूरज के बुलन्द होने यानि सूरज के निकलने के तक़रीबन 15 मिनट बाद से शुरू होकर ज़वाल तक रहता है। यानि

सुन्नत यह है कि जल्दी पढ़ने की कोशिश की जाए और ख़ास तौर से ईदुल अज़्हा की नमाज़ ईद की नमाज़ के मुक़ाबले में जल्दी पढ़ी जाए, ताकि क़ुर्बानी जल्दी की जा सके, जबकि ईदुल फित्र में फितरे की अदायगी के लिए ज्यादा समय की ज़रूरत होती है। (शामी)

ईद की नमाज़ का तरीक़ा

नमाज़ शुरू करते वक़्त मुक़्तदी (नमाज़ पढ़ने वाले) के दिल में हो कि क़िब्ला की ओर होकर मैं दो रकआत वाजिब ईदुल फ़ित्र मय ज़ाएद छः तकबीरों के, पीछे इस इमाम के, मुंह मेरा काबे शरीफ़ की तरफ़ करके अदा कर रहा हूं। नियत के लिए दिल में ध्यान काफ़ी है। ज़बान से नियत के बोल अदा करना ज़रूरी नहीं है। लेकिन अगर कोई ज़बान से कह ले तो अच्छा ही है कोई हर्ज नहीं है। (इल्ला शबाह)

फिर नियत के बाद इमाम तेज़ आवाज़ से "अल्लाहु अकबर" कहकर हाथ बांध ले और मुक़्तदी धीरे से "अल्लाहु अकबर" कहकर हाथ बांध ले और फिर दोनों "सना" पढ़ें। सना के बाद इमाम फिर बुलन्द आवाज़ से तकबीर कहकर अपने दोनों हाथों को कानों तक ले जाए और फिर छोड़ दे, तमाम मुक़्तदी भी उसके साथ ऐसा ही करें। फिर दूसरी बार इमाम तकबीर कहते हुए अपने दोनों हाथों को कानों की लौ तक ले जाए और फिर छोड़ दें, मुक़्तदी भी ऐसा करें, फिर तीसरी बार इमाम और तमाम मुक़्तदी तकबीर कहकर हाथ उठांए और इस बार हाथ छोड़ें नहीं बल्कि बांध लें।

तकबीर के बाद इमाम धीरे से "बिस्मिल्लाह" पढ़े, फिर इमाम बुलन्द आवाज़ से सूरह फ़ातिहा और कुरआन की कोई सूरह पढ़े। फिर रुकूअ और सज्दा करके एक रकआत पूरी कर ले।

दूसरी रकआत में खड़े होकर पहले सूरह फ़ातिहा और कोई सूरह पढ़े और सूरह ख़त्म कर ले तो रुकूअ में न जाए, बल्कि फिर तकबीर कहकर दोनों हाथ कानों तक ले जाए और छोड़ दे और मुक़्तदी भी ऐसा करें। फिर दूसरी बार तकबीर कहकर हाथ उठाए और छोड़ दे और तमाम मुक़्तदी भी ऐसा करें। फिर तीसरी बार इमाम तकबीर कहकर हाथ उठाए और छोड़ दे और मुक़्तदी भी ऐसा करें। फिर चौथी बार इमाम तकबीर कहकर रुकूअ में चला जाए और उसके साथ सभी मुक़्तदी भी रुकूअ में चले जाएं और जैसे आम तौर पर नमाज़ पूरी की जाती है पूरी करें।

अगर किसी की रकआत छूट जाए और इमाम को रुकूअ में पाए तो रुकूअ में बजाए तस्बीह के तकबीर कहे और अगर रुकूअ भी न पाए तो मुकम्मल रकआत छूट जाए तो जब नमाज़ पूरी करने के लिए खड़ा हो तो पहले सूरह फ़ातिहा और सूरह पढ़े फिर तीन बार तकबीर कहने के बाद रुकूअ में जाए। (शामी)

नमाज़ा के बाद दूसरी नमाज़ों की तरह दुआ करने में कोई हर्ज नहीं है, लेकिन दुआ बजाए खुत्बे के नमाज़ के बाद करना बेहतर है। मुस्लिम शरीफ़ की एक रिवायत में है कि औरतें दुआ में शिरकत के लिए जाती थीं। (मुस्लिम)

अगर किसी शाफ़ई मसलक के या किसी ऐसे इमाम के पीछे ईद की नमाज़ पढ़ने का मौक़ा मिले जो छः से ज़्यादा तकबीरें कहते हैं तो इमाम की इत्तेबा में सभी तकबीरे कह लेनी चाहिए। (शामी)

ईद की नमाज़ के बाद खुत्बा देना सुन्नत है और मुस्तहब यह है कि पहले खुत्बे में लगातार नौ बार और दूसरे खुत्बे में लगातार सात बार तकबीर कह कर खुत्बा शुरू किया जाए। (शामी)

बारिश या उस जैसी किसी बाधा की वजह से ईद की नमाज़ दूसरे दिन पढ़ सकता है और बख़रीद की नमाज़ को 11/12 तक टाला जा सकता है। (शामी)

ईद की नमाज़ों के बाद मिलना या मुसाफ़ह करना या गले लगना सुन्नत का काम नहीं है, हां अगर किसी से उसी वक़्त मुलाक़ात हो उससे मुसाफ़ह किया जा सकता है या गले लगा जा सकता है।

(मजालिसुल अबरार)

आख़िरत पर ईमान

मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

हदीसः "हज़रत उमर बिन अलख़त्ताब (रज़ि0) से रिवायत है नबीकरीम (स0अ0) ने कहाः

"ईमान यह है कि तुम ईमान लाओ अल्लाह पर, उसके फ़रिश्तों पर, और उसकी किताबों पर, और उसके रसूलों पर, और आख़िरत के दिन पर, और अच्छी–बुरी तक़दीर पर।"

फ़ायदाः अल्लाह और उसके रसूल (स0अ0) पर ईमान के बाद "आख़िरत पर ईमान" इस्लामी अक़ीदे का बहुत ही महत्वपूर्ण हिस्सा है। ईमान के पूरा होने की शर्तों में यह बात दाख़िल है कि इन्सान आख़िरत पर पूरा ईमान रखता हो। आख़िरत पर ईमान का मतलब यह है कि इन्सान को इस दुनिया से जाने के बाद से लेकर हश्र का मैदान क़ायम होने तक के सभी मराहिल (क्रम) पर यक़ीन हो और आख़िरत में अल्लाह तआला के सामने अपने आमाल (कर्मों) के पेश होने का ध्यान हो।

आख़िरत पर ईमान लाने के तीन अहम हिस्से हैं। पहला यह कि हर इन्सान को मरने के बाद क़यामत के दिन दोबारा ज़िन्दा किया जाएगा और सभी इन्सानों के दोबारा ज़िन्दा होने में अल्लाह तआला को कुछ भी मुश्किल न होगी। कुरआन मजीद में इस चीज़ को बहुत सी जगहों पर साफ़–साफ़ कह दिया गया है, एक जगह हैः

"जिस तरह शुरू में हमने उसको बनाया था, दोबारा उसी तरह हम उसको कर देंगे, यह हमारे ज़िम्मे है, हम करके रहेंगे।" (सूरह अम्बियाः 104)

आख़िरत पर ईमान लाने का दूसरा अहम हिस्सा यह है कि हर इन्सान को क़यामत के दिन उसके किये का पूरा–पूरा बदला दिया जाएगा और इस बारे में ज़रा भी नाइंसाफ़ी न होगी। कुरआन मजीद में जज़ा और सज़ा के इस नज़रिये को भी बहुत ही साफ़ तौर पर बयान किया गया है। एक जगह कहा गया हैः

"और क़यामत के दिन हम इन्साफ़ की तराज़ू क़ायम करेंगे तो किसी पर ज़रा भी ज़ुल्म न होगा और अगर राई के दाने के बराबर भी कुछ होगा तो हम उसे ला हाज़िर करेंगे और हिसाब लेने को हम काफ़ी हैं।" (सूरह अम्बियाः 47)

आख़िरत पर ईमान लाने का तीसरा बुनियादी भाग जन्नत की नेमतों और जहन्नम की तकलीफ़ों पर ईमान रखना है। कुरआन मजीद ने इस विषय को भी कई जगहों पर साफ़ किया है। जन्नत की नेमतों के बारे में एक जगह कहा गया हैः

"अल्लाह तआला ने ईमान वाले मर्दों और ईमान वाली औरतों से ऐसी जन्नतों का वादा कर रखा है जिनके नीचे नहरें जारी होंगी, हमेशा के लिए उसी में रह पड़ेंगे और हमेशा रहने वाली जन्नतों में अच्छे–अच्छे मकानों का।" (सूरह तौबाः 72)

इसी तरह जहन्नत की तकलीफ़ों का एक जगह ज़िक्र हैः

"यक़ीनन हमने ज़ालिमों के लिए ऐसी आग तैयार कर रखी है जिसकी क़नातें उनको अपने घेरे में ले लेंगी और जब वह पानी मागेंगे तो तेल की तलछट जैसे पानी से उनकी फ़रियाद पूरी की जाएगी जो चेहरों को झुलसा कर रख देगा।" (सूरह कहफ़ः 29)

वाक़्या यह है कि आख़िरत पर ईमान लाने का अक़ीदा हर इन्सान की ज़िन्दगी में बहुत ही अहमियत रखता है। इन्सान के अन्दर जिस क़दर यह अक़ीदा मज़बूत होगा, उसी क़दर उसके अन्दर भलाई के काम करने का जज़्बा होगा और जिस क़दर इस अक़ीदे में सुस्ती होगी और इस सिलसिले में गफ़लत से काम लिया जाएगा, उसी क़दर दीन पर अमल की राहें मुश्किल होती चली जाएंगी और इन्सान की ज़िन्दगी चोब–ख़ुश्क के सिवा कुछ न रह जाएगी। यही वह बुनियादी अक़ीदा है कि उसकी ग़ैर मौजूदगी में इन्सान की ज़िन्दगी महज़ खाने–पीने और स्वार्थ की संज्ञा है। मौजूदा दौर जो कि स्वार्थ का दौर कहलाता है, वास्तव में इसी बुनियादी अक़ीदे (आस्था) से गाफ़िल होने का नतीजा है।

राष्ट्रपति ट्रम्प की व्यक्तित्व

जनरल मिर्ज़ा असलम बेग

नये चुने गये अमरीकी राष्ट्रपति स्पष्टवाद, ग़ैर लचीला रवैया, दो टूक बात कहने का अंदाज़ को देखते हुए एक दिलचस्प व्यक्तित्व के व्यक्ति हैं। मुश्किल चुनावों के बाद चुने जाने वाले अमरीकी राष्ट्रपति ने अपनी चुनावी मुहिम के दौरान अपनी भविष्य की योजनाओं, विचारों का परिदृश्य और अपनी ज़ाति शख़्सियत के संदर्भ से बहुत सी बातें लगी–लिपटी के बिना साफ़ कर दी और अपनी तमाम मुहिम के दौरान कुछ अहम मामले भी उठाए जो अमरीकी जनता के लिए अत्यधिक चिन्ता का विषय हैं। जिनको स्पष्ट करना ज़रूरी है:

यदि इसी प्रकार शरणार्थियों के आने का सिलसिला जारी रहा तो 2050 तक अमरीकी नागरिक नौकरियों से वंचित और अल्पसंख्यक बन कर रह जाएंगे। निसंदेह यह बात अत्यधिक चिन्ता का विषय है। इसके बावजूद कुछ लोग ट्रम्प को नस्लवादी कहते हैं, जो ठीक नहीं है। हिलेरी के मुक़ाबले में तीन मिलियन कम वोट लेने के बावजूद चुनावी कॉलेज (Electoral College) ने उन्हें राष्ट्रपति चुना है। विख्यात फ़िलास्फ़र रिचर्ड रोरटी ने 1988 ई0 में कहा था कि:

"व्यवस्था की नाकामी की वजह से ग्रामीण क्षेत्र के वोटर किसी मज़बूत उम्मीदवार को चुनने का फ़ैसला करेंगे। ऐसा उम्मीदवार जो उन्हें यक़ीन दिला सके कि चुने जाने के बाद वह लड़खड़ाती हुई ब्यूरोक्रेसी, शातिर क़ानूनदानों, मुनाफ़ा परस्त व्यापारियों और मार्डन प्रोफ़ेसरों पर लगाम डाल सके" वह मज़बूत उम्मीदवार ट्रम्प है जो आ चुका है।

चीनी सामानों की भरमार के कारण अमरीकी जनता की हैसियत "ग्राहक समाज" बन कर रह गयी है जो अमरीकी कारखानों की बन्दी और बेरोज़गारी का कारण है और सामाजिक असंतुलन बढ़ रहा है। जिसका समापन करना आवश्यक है। इसका मतलब यह नहीं कि चीन से आर्थिक युद्ध शुरू हो जाएगा बल्कि स्वयं को मज़बूत करना ज़रूरी होगा।

चरमपन्थियों और आतंकवादियों का समापन करना तुरन्त आवश्यक है, जिसका कारण अनुचित विदेशी आक्रमण है। जिसकी शुरूआत अफ़ग़ानिस्तान में रूस के बाद जार्ज बुश ने की और फिर 9/11 की घटना का बदला लेने के लिए अफ़ग़ानिस्तान पर चढ़ाई कर दी और राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन को रसायनिक हथियार रखने के नाम पर सबक़ सिखाने की ख़ातिर इराक़ को तबाह कर डाला। राष्ट्रपति ओबामा ने इराक़ और अफ़ग़ानिस्तान की जंगे ख़त्म करने का वादा किया था। लेकिन उन्होंने सीरिया, लीबिया और यमन में हस्तक्षेप किया जिससे मुसलमान देशों में अलक़ायदा, अलनसरा, और दूसरे संगठनों की ओर से कठोर प्रतिक्रिया आयी और फिर आइ एस जैसे आतंकवादी संगठन की ओर से बदले की कार्यवाहियों का आरम्भ हुआ है। अफ़ग़ानिस्तान तालिबान से निपटने के संदर्भ से राष्ट्रपति ट्रम्प ग़लती पर हैं, क्योंकि वे उन्हें आतंकवादी समझते हैं जबकि वे हुर्रियत पसंद है और पिछले 35 सालों से अपने देश को विदेशी गुलामी से आज़ाद कराने की जंग लड़ रहे हैं। क्षेत्र में स्थायी शांति की स्थापना उसी समय संभव है जब ट्रम्प इस ज़मीनी हक़ीक़त को समझ लेंगे।

अमरीकी राजनीति में यहूदी लाबी को ताक़तवर हैसियत हासिल है। फ़िलिस्तीन के संदर्भ से "दो रियासतों" की स्थापना के एजेन्डे का समर्थन और फ़िलिस्तीनी अथारिटी को 220 मिलियन डालर की भेंद देने पर यहूदी सख़्त नाराज़ हैं। ओबामा के इस काम पर इस्राईल के प्रधानमंत्री ने सख़्त नाराज़गी का इज़हार किया जबकि ट्रम्प उनकी हमदर्दी हासिल करने में सफल रहे हैं। जिस पर यहूदियो ने राष्ट्रपति के चुनाव में ट्रम्प की मदद की जिसके नतीजे में उन्हें सफलता प्राप्त हुई है।

ट्रम्प को इस हक़ीक़त का भी स्वीकार है कि रूसी राष्ट्रपति पुतिन ने अमरीकी नेतृत्व को दिशा दी है। जिसका तोड़ हासिल करने के लिए ट्रम्प ने शीत युद्ध को रद्द करते हुए पुतिन से संपर्क बनाया है ताकि दुनिया कसीरुल जहती व्यवस्था की राह पर लगाया जा सके और अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की रूपरेखा को बदला जा सके।

ट्रम्प ने अमरीका को Trans Pacific Partnership से अलग कर लिया है, क्योंकि TTP का

मक़सद चीन की बढ़ती हुई ताक़त को सीमित करना है। जबकि ट्रम्प एक अलग अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के समर्थक हैं। जिसकी रूपरेखा जल्द सामने आएगी। ट्रम्प के इस फ़ैसले से भारत को सुबकी उठाना पड़ी है, क्योंकि इस इत्तिहाद में भारत को केन्द्रीय महत्व प्राप्त था और उसे ओबामा की Pivot Asia पॉलिसी का अहम किरदार माना जाता है।

उपरोक्त लाइनों के अध्ययन से ट्रम्प का सही दृष्टिकोण सामने आया है जबकि अमरीकी मीडिया के चर्चे भ्रमित करने वाले हैं और हक़ीक़त पसंदाना दिखाई नहीं देते।

हममें से अक्सर को ट्रम्प के बारे में यह चिन्ता है कि वे अमरीका के राष्ट्रपति बनने के लायक़ नहीं क्योंकि उनका अधीर व्यवहार सिर्फ़ आलोचना तक सीमित नहीं रहेगा। बजाए इसके कि वे अमरीकी जनता के ग़म व गुस्से और महरूमी के एहसास का इलाज करते वे उल्टा जलती पर तेल डालने का काम करेंगे। एक पक्षपातपूर्ण रूझान और चंचल स्वभाव वाला व्यक्ति इस समय राष्ट्रपति है जिस पर अन्दरूनी तौर पर कोई रोक–टोक नहीं होगी। इस तरह अच्छे परिणाम की आशा करना व्यर्थ होगा।

ट्रम्प अपनी हैसियत की सीमा का अन्दाज़ा करने में नाकम होंगे और रोब डालने वाले वक्ता की तरह सरकारी अधिकारों को प्रयोग करते हुए आई आर एस, एफ़ बी आई जैसी कानूनी एजेसियों के ज़रियों अपनी निजी समस्याओं को सुलझाएंगे। अपना रास्ता अपनाने के लिए वह जो चाहेंगे गकर कर गुज़रेगे। यही काम उनके जीवन में निर्णायक चरित्र का वाहक रहा है।

ट्रम्प इस बात को यक़ीनी बनाएंगे कि अमरीकी जनता में उनकी प्रसिद्धी बनी रहे। अमरीकी इन्टेलिजेंस को मास्को के संदर्भ से तेज़ सवालों का सामना होगा जिनके नुक़सानों को सीमित रखना होगा ताकि ट्रम्प के हवाले से देश के मामलों में रूसी हस्तक्षेप का इशारा जनभावना पर असरअन्दाज़ न हो सके।

ट्रम्प साफ़ दिल और चंचल स्वभाव वाले व्यक्ति हैं जिन पर अन्दरूनी तौर पर किसी क़िस्म की कोई रोक टोक नहीं होगी। यही वह रूझान है जो उनकी कामयाबी की ज़मानत होंगे। जबकि उनके पहले के लोग नाकाम हुए थे। निर्णय करने की क्षमता उनकी मज़बूत है और उन्हें एक नेशलन सिक्योरिटी कौन्सिल का समर्थन भी हासिल है। वह अपनी ताक़त का सकारात्मक रूप से प्रयोग करेंगे क्योंकि रिपब्लिकन पार्टी को एक चौथाई सदी के बाद कांग्रेस पर कंट्रोल हासिल हुआ है। ट्रम्प को सही रास्तों पर चलाए रखना संस्थानों की ज़िम्मेदारी है। इसी तरह ट्रम्प के ज़ाती फ़ैसला लेने के काम की निगरानी भी मुमकिन होगी।

अफ़ग़ानिस्तान में शांति स्थापना की कुंजी ट्रम्प के हाथों में है। अमरीका ने अफ़ग़ान मुजाहिदीन को सत्ता में शामिल करने के बजाए उन्हें चरमपन्थी घोषित कर दिया गया, जिससे अफ़ग़ानिस्तान में गृहयुद्ध की शुरूआत हुई जो आठ साल तक जारी रही। इस गृहयुद्ध की कोख से तालिबान ने जन्म लिया जिन्होंने अफ़ग़ानिस्तान पर अपनी हुक्मरानी क़ायम की और फिर 2001 में अमरीका और नाटो ने अफ़ग़ानिस्तान पर चढ़ाई कर दी लेकिन नाकाम रहे और पराजित हुए लेकिन अब भी अपनी हार स्वीकार करने को तैयार नही है और कुछ हज़ार फ़ौजी अफ़ग़ानिस्तान में बिठाए हुए हैं। साज़िशें हो रही हैं। यह वह चिंताजनक परिस्थिति है जो ट्रम्प को विरासत में मिली हुई है, लेकिन जल्द ही वास्तविक परिस्थिति ट्रम्प के सामने आ जाएगी, जिससे उन्हें इस मामले से निपटने का रास्ता मिल सकेगा।

ट्रम्प ने अपने पदाधिकारियों का चुनावच करके अपनी सरकार के रूझान को काफ़ी हद तक स्पष्ट कर दिया है। उनके साथियों में मेड डाग जनरल माट्स जैसे लोग शामिल हैं, जो यक़ीनी तौर पर कारकरदगी दिखाएंगे। उन्हें नर्म रवैया अपनाना होगा क्योंकि सितारों से सजी हुई अमरीकी धरती अफ़गानिस्तान और इराक़ के खून से लबरेज़ मैदानों से बहुत अलग है। ट्रम्प ताज़ा दिल व दिमाग़ के साथ वाइट हाउस में दाख़िल हुए हैं। वे किसी भ्रमपूर्ण विचारों के गुलाम नहीं है जिसकी वजह से अमरीका और उसके मित्र देशों को अफ़ग़ानिस्तान और इराक़ में शर्मनाक पराजयों का सामना करना पड़ा है। अबएक नई सुबह का आगाज़ मुमकिन है, क्योंकि वे एक ऐसे राष्ट्रपति हैं जो न केवल आज़ाद ख़्याल और चंचल स्वभाव के मालिक हैं, बल्कि उन पर अन्दरूनी तौर पर कोई रोक–टोक नहीं है।

एतिकाफ़ के कुछ मसले

एतिकाफ़ अरबी भाषा का एक शब्द है जिसका अर्थ ठहरने और स्वंय को रोक लेने का है। शरीअत के अनुसार मस्जिद के अन्दर नियत के साथ अपने आप को कुछ विशेष चीज़ों से रोके रखने का नाम एतिकाफ़ है। रसूलल्लाह (स0अ0) ने एतिकाफ़ के विशेष लाभ बताए हैं। रसूलुल्लाह (स0अ0) ने कहा है कि एतिकाफ़ की हालत में एतिकाफ़ करने वाला गुनाहों से तो दूर रहता ही है और मस्जिद से बाहर न निकलने की वजह से जिन नेकियों से वंचित रहता है वो नेकियां भी अल्लाह तआला के करम से उसकी नेकियों में शामिल हो जाती हैं। रसूलल्लाह (स0अ0) ने जिस पाबन्दी से एतिकाफ़ किया उम्मुलमोमिनीन हज़रत आयशा रज़ि0 कहती हैं कि आप (स0अ0) वफ़ात (देहान्त) तक बराबर रमज़ानुल मुबारक के आख़िरी दस दिनों में एतिकाफ़ करते रहे। फिर आप (स0अ0) के बाद आप की बीवियों ने भी एतिकाफ़ फ़रमाया। दस दिन का एतिकाफ़ आप (स0अ0) का नियम था। एक साल एतिकाफ़ न कर सके तो दूसरे साल बीस दिन का एतिकाफ़ फ़रमाया।

एतिकाफ़ के प्रकार

फ़ुक़हा (धार्मिक विद्वान) ने आदेश और महत्व के आधार पर एतकाफ़ की तीन क़िस्में बयान की हैं।

1– वजिब 2– मसनून 3– मुसतहब

वाजिब एतिकाफ़

किसी नज़र और मन्नत मांगने की वजह से दूसरी इबादतों की तरह एतिकाफ़ भी वाजिब हो जाता है। एतिकाफ़ कम से कम एक दिन का होगा उससे कम का नही और उसकी नज़र के समय रोज़ा रखने की नियत हो या न की हो, बहरहाल रोज़ा रखना आवश्यक होगा।

मसनून एतिकाफ़

रमज़ानुल मुबारक के आख़िरी दस दिनों में एतिकाफ़ सुन्नते मुअक्कदा अलल किफ़ाया है यानि अगर किसी एक व्यक्ति ने एतिकाफ़ कर लिया तो सभी से सुन्नत को छोड़ने का गुनाह ख़त्म हो जाएगा और अगर किसी ने नहीं किया तो सभी सुन्नत को छोड़ने के गुनहगार होंगे। एतिकाफ़ मसनून के लिए रोज़ा ज़रूरी है।

एतिकाफ़ का तरीक़ा ये है कि बीस रमज़ानुल मुबारक को अस्र के बाद सूरज डूबने से पहले एतिकाफ़ की नियत से मस्जिद में दाख़िल हो जाए और उन्तीस रमज़ानुल मुबारक को ईद का चांद होने के बाद या तीस तारीख़ को सूरज डूबने के बाद वापस आ जाए।

नफ़िल एतिकाफ़

नफ़िल एतकाफ़ में न रोज़ा की शर्त है न मस्जिद में रात गुज़ारने की और न दिनों की कोई संख्या है जितने दिन और जितने क्षणों का चाहे एतिकाफ़ कर सकता है उसका तरीक़ा ये है कि मस्जिद में दाख़िल होते समय एतिकाफ़ की नियत कर ले। इस प्रकार जब तक वो मस्जिद में रहेगा एतिकाफ़ का सवाब मिलता रहेगा और जब बाहर आ जाएगा तो एतिकाफ़ ख़त्म हो जाएगा।

एतिकाफ़ की शर्तें

एतिकाफ़ सही होने के लिए एतिकाफ़ करने वाले का मुसलमान और बालिग़ होना, नियत का होना, मर्द का नापाकी व औरत का माहवारी से पाक होना और ऐसी मस्जिद में एतिकाफ़ करना जिसमें पांच वक्त की नमाज़ अदा की जाती हो शर्त है। बालिग़ होना ज़रूरी नहीं बालिग होने के निकट और समझदार नाबालिग़ भी एतिकाफ़ कर सकते हैं। वाजिब और मसनून एतिकाफ़ के लिए रोज़ा रखना भी ज़रूरी है।

एतिकाफ़ की बेहतर जगह

एतिकाफ़ उन इबादतों में से है जिसकी अदाएगी मस्जिद में होनी चाहिए, कहीं और बैठ जाना काफ़ी नही इसलिए कि यही रसूलल्लाह (स0अ0) का नियम रहा है और हज़रत अली रज़ि0 से रिवायत है कि आप (स0अ0) ने फ़रमाया कि एतिकाफ़ केवल मस्जिद में ही होता है। एतिकाफ़ के लिए मर्दों के हक़ में सबसे बेहतर मस्जिद–ए–हराम फिर मस्जिद–ए–नबवी फिर मस्जिद–ए–अक़्सा और फिर शहर की जामा मस्जिद जहां नमाज़ी अधिक आते हों और फिर अपने मोहल्ले की मस्जिद।

औरतों के लिए एतिकाफ़ करना सुन्नत है लेकिन ये ज़रूरी है कि शौहर से आज्ञा ले ले। औरत के लिए मस्जिद में एतिकाफ़ करना मकरूह है। उनको घर में एतिकाफ़ करना चाहिए। अगर घर में पहले से कोई जगह एतिकाफ़ के लिए तय है तो वहीं एतिकाफ़ करे ये इमाम

अबू हनीफ़ा रह0 की राय है क्योंकि इस दौर में औरतों का मस्जिद में एतिकाफ़ करना फ़ितने से ख़ाली नही इसलिए रसूलल्लाह (स0अ0) ने औरतों के मस्जिद में नमाज़ अदा करने के मुकाबले में घर में नमाज़ अदा करने को बेहतर क़रार दिया है।

एतिकाफ़ करने वाले को चाहिए कि अपना समय कुरआन पाक की तिलावत, रसूलल्लाह (स0अ0) की सीरत (चरित्र), अम्बिया व बुज़ुर्गों के वाक़्यों व हालातों और दीनी किताबों का अध्ययन और उन्ही चीज़ों को पढ़ाना, दीनी किताबों को लिखना या उनको एकत्रित करने इत्यादि में अपना समय लगाएं। एतिकाफ़ की हालत में ख़ुशबू वग़ैरह लगा सकते हैं। एतिकाफ़ के आदाब में ये भी है कि मस्जिद के आदाब का लिहाज़ रखा जाए। मस्जिद में सामान लाकर ख़रीदा–बेचा न जाए हाँ अगर सौदा बाहर हो तो इस तरह के मामले की गुंजाइश है। इबादत समझ कर बिल्कुल ख़ामोश रहना या बेहूदा और नामुनासिब बातें करना भी मकरूह है।

एतिकाफ़ को तोड़ने वाली चीज़ें

बीवी से हमबिस्तरी, मस्जिद के अन्दर हो या बाहर, जानबूझ कर हो या भूल से, दिन में हो या रात में, वीर्य निकले या न निकले, हर हाल में एतिकाफ़ टूट जाएगा। हमबिस्तरी से पहले के मामले यानि छूना या चूमना इत्यादि भी जाएज़ नही मगर उससे एतिकाफ़ नही टूटेगा बल्कि बीवी से बातचीत करना सही है।

इसी प्रकार ऐसी बेहोशी जो एक दिन से अधिक हो गयी हो तो एतिकाफ़ टूट जाता है औरत को मासिक धर्म आ गया तो उससे भी एतिकाफ़ टूट जाएगा और उसकी क़ज़ा वाजिब होगी।

दिन में जानबूझ कर खा पी लेने से रोज़ा ख़राब हो जाता है और एतिकाफ़ भी टूट जाता है।

मस्जिद से बाहर निकलना

बिना आवश्यकता मस्जिद से बाहर निकल जाने से भी एतिकाफ़ टूट जाता है। इमाम अबू हनीफ़ा रह0 के नज़दीक तो बिना आवश्यकता थोड़ी देर के लिए निकलने से भी एतिकाफ़ ख़राब हो जाता है। लेकिन साहिबैन रह0 के निकट दिन रात के अधिकतर भाग में मस्जिद से बाहर रहने से एतिकाफ़ ख़राब हो जाता है। अल्बत्ता किसी ज़रूरत के लिए बाहर निकला जा सकता है। ये आवश्यकता दो प्रकार की है।

1– स्वाभाविक

2– शरई

स्वाभाविक आवश्यकता से मुराद पेशाब पाखाना ग़ुस्ल (स्नान) वाजिब (अनिवार्य) हो जाने की स्थिति में ग़ुस्ल (स्नान) के लिए निकलना।

खाना लाने वाले न हों तो खाने के लिए निकलना इत्यादि शामिल है।

मगर इन सूरतों में भी आवश्यकता से अधिक नहीं ठहरना चाहिए।

इन्ही शरई कामों में उलमा ने हुक़्क़ा को शुमार किया है कि मस्जिद से बाहर जाकर हुक़्क़ा पीकर बदबू मिटाकर मस्जिद में आ जाना चाहिए। यही तरीक़ा उन लोगों को भी अपनाना चाहिए जो सिगरेट पान वग़ैरह के आदी हों।

शरई आवश्यकताओं में से ये भी है कि अगर ऐसी मस्जिद में एतिकाफ़ कर रहा है जहां जुमा नही होता है तो जुमा के लिए जामा मस्जिद जाना सही है। बल्कि इसकी रिआयत जरूरी है कि केवल इतनी देर दूसरी मस्जिद में ठहरे कि तहीयतुल मस्जिद पढ़ ले। सुन्नत अदा कर ले फिर ख़ुत्बे से जुमा के बाद की सुन्नतें अदा करने के बाद जल्द से जल्द अपनी मस्जिद में आ जाए देरी मकरूह है।

अगर कोई शख़्स जबरन निकाल दे या मस्जिद टूट जाए जिसकी वजह से निकलना पड़े या उस मस्जिद में जान व माल का ख़तरा हो जाए तो उन सभी हालतों में उस मस्जिद के बजाए दूसरी मस्जिद में जाकर एतिकाफ़ कर लेना सही है और उससे एतिकाफ़ में कोई ख़लल नही पड़ेगा लेकिन दूसरी मस्जिद में फ़ौरन बिना देर किये चला जाए इसी प्रकार अगर एतिकाफ़ के बीच मस्जिद से निकल कर अज़ान देने के लिए मीनार पर चढ़ जाए तो इसकी भी इजाज़त है।

एतिकाफ़ की क़ज़ा

अगर एतिकाफ़ वाजिब (अनिवार्य) था और किसी वजह टूट गया तो उसकी क़ज़ा ज़रूरी है। इमाम अबू हनीफ़ा रह0 के नज़दीक मसनून (सुन्नत) एतिकाफ़ में केवल उस दिन की क़ज़ा करनी होगी जिस दिन का एतिकाफ़ टूट गया जबकि इमाम अबू यूसुफ़ रह0 के निकट पूरे दस दिन की क़ज़ा वाजिब होगी। मशहूर फ़क़ीह अल्लामा हाफ़िज़ इब्ने हुमाम रह0 का रुझान भी इसी तरफ मालूम होता है इसलिए यही अधिक अच्छा तरीक़ा है कि पूरे अशरे की क़ज़ा की जाए।

समय की महत्वपूर्ण समस्या

मौलाना अज़ीज़ुल हसन सिद्दीक़ी ग़ाज़ीपुरी

तलाक़ जिसको लेकर आजकल बड़ा वावेला मचा हुआ है और मुसलमानों को इसका ताना दिया जाता है और उन पर उंगलियां उठायी जा रही हैं। हालांकि वास्तविकता यह है कि कुछ परिस्थितियों में मर्द और औरत दोनों के लिए यह एक उपकार साबित होता है। जवाहर लाल नेहरू सरकार ने 1954 ईसवी में इस्लामी शरीअत से तलाक़ की कुछ दफ़ाओं को उधार लेकर हिन्दू कोड बिल में शामिल किया था।

मालूम होना चाहिए कि जायज़ चीज़ों में तलाक़ सबसे अधिक अप्रिय चीज़ है। लेकिन जाहिलों ने इसका नाजायज़ तरीक़ा अपना लिया है। हमारा असंतुलित जीवन इसका महत्वपूर्ण कारण है। आर्थिक तंगी कहां नहीं होती। मियां साहब बाहर से मेहनत करके थके–हारे आए, किसी बात पर गुस्सा आ गया, बस तीन फ़ायर झोंक दिये। ऐसे जाहिलों का तलाक़ के बारे में बताने की ज़रूरत है। यदि वास्तव में तलाक़ ही देना है तो तीन महीनों में तीन तलाक पाकी के दिनों में (अर्थात औरत का माहवारी का समय न हो) देना चाहिए ताकि रुजू किया जा सके।

अफ़सोस की बात यह है कि मर्द–औरत इस्लामी अदालतों से संपर्क करने के बजाए सरकारी अदालत का रुख़ करते हैं। जहां समय भी बहुत लगता है और फ़ैसला इन्सानों के बनाए हुए क़ानूनों के अनुसार होता है जो खुदाई क़ानून से बहरहाल अलग होता है यानि दुनिया व आख़िरत के नुक़सान का चरितार्थ होता है।

पर्सनल लॉ बोर्ड यही बातें मुसलमानों, शासन और जनता को समझाना चाहता है। बेजा ज़िद और हठधर्मी अच्छी चीज़ नहीं है। मुसलमान अपने जीवन को इस्लामी सांचे में ढाल लें और झगड़े की सूरत में इस्लामी अदालतों से संपर्क करें तो सारे झगड़े ख़त्म हो जाएं। निकाह कराने वाले लोगों को चाहिए कि निकाह और मर्द–औरत के संबंध के बारे में ज़रूरी बातें बता दिया करें और मदरसे अपने सालाना जलसों में एक सभा ख़ास औरतों के लिए रखा करें। जिसमें पूरे तौर निकाह व तलाक़ के मसले और शरीअत के एहकाम सुनाए जाएं। इंशाअल्लाह हमारे समाज में राएज बहुत सारी ख़राबियां अपने से ही दूर हो जएगीं।

जहां तक भारतीय मुस्लिम महिला आंदोलन की सह संस्थापक ज़किया का सरकार से नया पर्सनल लॉ लागू करने की मांग का और उनकी जैसी कुछ औरतों की बेवजह की दौड़–धूप का संबंध है, उसक बारे में इतना ही कहना काफ़ी होगा कि मुक़दमों में झूठी गवाहियां देने वालों की समाज में कभी कमी नहीं रही है। जिस दिन राजीव गांधी की सरकार में मुस्लिम मुताल्लक़ा बिल पर राय ली जा रही थी, लोकसभा के बाहर सड़क पर कितनी ही ग़ैर मुस्लिम औरतें उसके ख़िलाफ़ नारे लगा रही थीं, जिन्हें बुर्के पहनाकर खड़ा किया गया था, बस ज़रूरत है आंखे खुली रखने की, सोचनेकी, समझने की।

बहुसंख्यक वर्ग को बड़ी महारत के साथ बदज़न किया गया है। लिहाज़ा ज़रूरत इस बात की है कि उन्हें दीन इस्लाम से ही नहीं बल्कि इस्लाम की देन से भी आगाह किया जाए। एक मिसाल से बात साफ़ हो जाएगी। एक जगह एक आलिम ने मुसलमान बच्चों की दीनी तालीम के विषय पर बड़ी प्रभावपूर्ण और मज़बूत भाषण दिया। इत्तेफ़ाक़ से इस जलसे में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से फ़ारिग़ होकर आये हुए नये–नये नवजवान हिन्दु जिन्होंने ग़ाज़ीपुर शहर में वकालत शुरू की थी शामिल थे। तक़रीर के ख़ात्मे पर उन्होंने कहा कि अगर दीनी तालीम ऐसी ही ज़रूरी तो हमें भी मुसलमान बच्चों के हक़ में इसकी वकालत करनी

चाहिए। मुश्किल यह है कि हमने इस्लाम का परिचय सिर्फ़ ज़बान से कराया लेकिन अमल से उसकी हक़्क़ानियत की गवाही नहीं दी।

यूं तो कॉमन सिविल कोड का शोशा आज़ादी के बाद ही छोड़ दिया गया था। लेकिन कभी–कभी सियासी ग़रज़ के तहत इस मुद्दे को उछाले जाने की एक रिवायत क़ायम रही है। कुछ महीने पहले इस मुद्दे को जिस तरह उछाला गया है उससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि उसके पीठ के पीछे चुनाव की राजनीति कार्य कर रही है। इस आग में घी डालने का काम हमारी कुछ मां–बहनों ने नादानी से कर डाला यानि अपने शौहर की नाराज़गी के कारण सीधे सुप्रीम कोर्ट पहुंच गयीं। वे अपने घर की चहारदीवारी और ख़ानदान के दायरे में समाधान करा सकती थीं लेकिन उन्होंने ख़ानदान के बुज़ुर्गों और दीन के आलिमों से सम्पर्क करने के बजाए वकीलों से मशविरा किया। ज़ाहिर है कि वकील दुनिया के क़ानून का सहारा लेकर अदालत में अर्ज़ी दाख़िल करेंगे। अर्ज़ी दाख़िल होने के बाद सुप्रीम कोर्ट ने सरकार से राय मांग ली और सरकार हलफ़नामा दायर करे मुक़दमें का एक पक्ष बन गयी और उसको मुस्लिम पर्सनल लॉ में दखल देने का मौक़ा मिल गया। सुप्रीम कोर्ट क्या फ़ैसला करती है और कॉमन सिविल कोड का मसला क्या रुख़ अपनाता है, यह बाद मे सामने आयेगा लेकिन एक बहुत बड़ा फ़ायदा यह हुआ कि इस मुददे ने मुसलमानों को एक प्लेटफ़ार्म पर खड़ा कर दिया। प्लेटफ़ार्म न तो सियासी था, न चुनावी, बल्कि ख़ास दीनी था। विभिन्न मसलकों और जमाअतों से संबंध रखने वाले मुसलमान अपनेआप इस प्लेटफार्म पर आ गये और एक आवाज़ से कहने लगे कि हमें इस्लामी शरीअत के ख़िलाफ़ कुछ भी क़ुबूल नहीं।

मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड के नेतृत्व को हम सलाम करते हैं और मुबारक बाद देते हैं कि उसने हस्ताक्षर मुहिम छेड़कर विरोधियों के गुब्बारों की हवा निकाल दी और लॉ कमीशन सोचने पर मजबूर हुआ। दूसरी क़ौमें सोचने पर मजबूर हुईं कि समान नागरिक संहिता की ज़द उनकी कौम पर पड़ी तो उनका क्या हश्र होगा।

हम मुसलमानों को याद दिलाना चाहेगे कि सौ साल पहले अंग्रेज़ो के ज़माने में बनारस के मुहल्ले दोसीपुरा के क़ब्रिस्तान में मुर्दा दफ़न करने को लेकर झगड़ा हो गया। मामला अदालत तक पहुंचा और और फ़ैसला हुआ देश के आज़ाद होने के लगभग चालिस साल बाद। फ़ैसले में उच्च न्यायालय ने कहा था कि मुर्दा लाश की बक़िया को निकालकर कहीं और दफ़न कर दिया जाए। मुसलमानों को इसी से मतभेद था। इधर सरकार ने अदालत के हुक्म की तामील में कोई कसर नहीं छोड़ी। पुलिस ही नहीं फ़ौजी जवानों की बटालियनें भी लगा दी गईं। मशीनगन लगा दी गई। निगरानी के लिए मचान बनाए गये। ख़ौफ़ व दहशत का वातावरण हो गया। गरज़ कि हालात बेहद धमाख़ेज़ हो गये। लेकिन मुसलमानों का मिसाली एकता अदालत के हुक्मनामे की राह में सद्दे सिकन्दरी बन गया। एक दिन पहले मुसलमानों का एक बड़ा जलसा हुआ जिसमें लाखों लोग शरीक हुए। मुसलमानों ने सारा कारोबार बन्द रखा और नेशनल कालेज में एकत्र हो गये मुसलमानों के बेमिसाल इत्तेहाद और इज्तिमा का असर था कि न क़ब्र खोदी जा सकी न लाश की बाक़ियात निकाली जा सकी। इस वाक़्ये से साबित होता है कि बुनियादी मसलों पर अगर मुसलमान एक हो जाएं और मिल–जुल कर आवाज़ बुलन्द करें तो वह ज़रूर सुन जाएगी। काश कि मुसलमानों की वर्तमान एकता स्थायी एकता व यकजहती का पेशख़ेमा हो।

मुस्लिम औरतों की झूठी हमदर्दी के दावेदारों ने यह जंग छेड़ी ही थी इस ग़रज़ से कि मुस्लिम समाज को डिस्टर्ब करके छोड़ेंगे। लेकिन हुआ इसके विपरीत। हम चाहेंगे तमाम मसलक से संबंध रखने वाले उलमा इस फ़िज़ा को क़ायम रखने की कोशिश करें। जुमा के ख़िताब में ख़ास तौर से मुसलमानो को पारिवारिक समस्याओं के हल के उपाय और शरई आदेश बयान करें। मुस्लिम समाज को इस्लामी केन्द्र पर लाने की कोशिश करें और इस्लामी अदालतों से संपर्क करने की राय दे और यह भी बताएं कि ख़ुशगवार ज़िन्दगी गुज़ारने के लिए क्या कुछ करना चाहिए। वक़्त और हालात की मांग है कि मौजूदा कुछ समय की एकता को स्थायी एकता में बदलने का भरपूर प्रयास किया जाए।

ज़कात
महत्व एवं मसले

ज़कात इस्लाम का एक महत्वपूर्ण अंग है। कुरआन पाक में जगह–जगह नमाज़ के साथ ज़कात देने पर भी ज़ोर दिया गया है। आप स0अ0 ने इसे इस्लाम के पांच बुनियादी हिस्सों (मूलभूत कर्तव्य) में से एक बताया है।

साहबे निसाब (जिस पर ज़कात देना अनिवार्य हो) होने के बावजूद ज़कात न अदा करने वालों को कुरआन पाक में जो कठोर दण्ड सुनाया गया है उससे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अल्लाह तआला का कथन है: "जो लोग अपने पास सोना–चांदी एकत्र करते हैं और उसको अल्लाह के रास्ते में ख़र्च नहीं करते तो (ऐ नबी स0अ0) आप उनको दर्दनाक अज़ाब (दण्ड) की ख़ुशख़बरी सुना दीजिये, ये दर्दनाक अज़ाब उस दिन होगा जिस दिन उस सोने और चांदी को जहन्नम (नर्क) की आग में तपाया जायेगा, फिर उसके द्वारा उनके माथे, उनके पहलू और उनकी पीठ को दाग़ा जायेगा (और उनसे कहा जायेगा) ये है वो ख़ज़ाना जो तुमने अपने लिये एकत्र किया था, तो आज तुम उस ख़ज़ाने का मज़ा चखो जो तुम अपने लिये एकत्र कर रहे थे।"

अतः हर साहबे निसाब मुसलमान के लिये ज़रूरी है कि वो पूरा–पूरा हिसाब करके ज़कात अदा करे। बहुत से लोग बिना हिसाब के ही कुछ रक़म या दूसरी चीज़ें ग़रीबों को देकर अपने को ज़िम्मेदारी से बरी समझते हैं। ये तरीक़ा सही नहीं है। पूरा हिसाब लगाकर ज़कात देना ज़रूरी है।

सदक़े से माल बढ़ता है

ज़कात न अदा करने का एक बड़ा बल्कि मूल कारण यह माना जाता है कि इससे माल की एक बड़ी मात्रा हाथ से निकल जायेगी और उसके बदले में कोई चीज़ नहीं मिलेगी। लेकिन कुरआन मजीद में इस ख़्याल की काट की गयी है और इस पर पूरी तरह से संतुष्ट किया गया है कि अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करने से माल घटता नहीं है, बल्कि इसमें बढ़ोत्तरी होती है।

अल्लाह तआला का इरशाद है:

"अल्लाह तआला सूद को घटाता है और सदक़ात (दान) को बढ़ाता है।" (बक़रा: 276)

ज़कात वाजिब (अनिवार्य) होने की शर्तें

ये भी ध्यान रहे कि ज़कात न हर व्यक्ति पर अनिवार्य होती है न हर माल पर बल्कि इसके अनिवार्य होने के लिये उस व्यक्ति का अक़्ल वाला होना और बालिग़ होना, साहबे निसाब होना, माल पर साल का बीतना, उस माल का कर्ज़ से ख़ाली होना, इसी तरह उसका हाजते अस्लिया (आवश्यक आवश्यकताओं) से ख़ाली होना शर्त है। एक भी शर्त न पायी जाये तो ज़कात अनिवार्य नहीं होगी।

ज़कात के माल

जिन चीज़ों पर ज़कात वाजिब (अनिवार्य) है वे मूल रूप से चार हैं।

1. जनवर
2. सेना
3. चांदी (नक़दी भी सोना और चांदी के हुक्म में आती है)
4. व्यापारिक माल

सोने–चांदी का निसाब (मात्रा)

चांदी की मात्रा दो सौ दिरहम जबकि सोने की मात्रा बीस मिसक़ाल है। हिन्दुस्तान के उलमा की खोज चांदी के दो सौ दिरहम यानि साढ़े बावन तोला (612.360 ग्राम) और सोने के बीस मिसक़ाल यानि साढ़े सात तोला (87.480 ग्राम) के बराबर होते हैं। जहां तक नक़द और व्यापारिक माल का संबंध है तो उनकी मिल्कियत का अनुमान भी चांदी के की मात्रा से किया जायेगा यानि अगर किसी के पास चांदी की मात्रा के बराबर नक़द रक़म या व्यापारिक माल है तो वो शरीअत के अनुसार साहबे निसाब (जिस पर ज़कात अनिवार्य हो) है।

फिर ये भी ध्यान रहे कि सोना–चांदी चाहे इस्तेमाल हो रहे ज़ेवर की शक्ल में हो या न इस्तेमाल हो रहे ज़ेवर की शक्ल में हो, चाहे सिक्कों या ज़ुरूफ़ वग़ैरह की शक्ल में हो, अगर वह निसाब (मात्रा) के बराबर है और उस पर साल गुज़र जाता है तो उसकी ज़कात बहरहाल वाजिब (अनिवार्य) हो जायेगी। यही आदेश नक़द रक़म का भी है। लेकिन बक़िया दूसरे माल यानि उरूज़ में ये भी शर्त है कि वो व्यापार की नियत से हों वरना उन पर ज़कात वाजिब नहीं होगी।

हौलान–ए–हौल का मतलब

किसी के पास निसाब के बराबर (मात्रानुसार) ज़कात का माल है तो अगर साल के बीच में उस माल में बढ़ोत्तरी होती है तो उस बढ़े हुए माल का हिसाब पहले से मौजूद माल की तारीख़ से किया जायेगा। जब बक़िया माल पर साल गुज़र जाये तो उसकी ज़कात के साथ उस ज़ायद माल की भी ज़कात निकालना ज़रूरी होगा ये नहीं कि हर बढ़ोत्तरी के लिये अलग से साल का हिसाब किया जाये और यह कि साल गुज़रने में अंग्रेज़ी महीनों के बजाये चाँद के महीनों का हिसाब किया जायेगा।

किस दिन की मालियत का एतबार होगा

व्यापारिक माल के बारे में आ चुका है कि उन पर ज़कात अनिवार्य है। जैसे अगर किसी की दुकान या कोई कारोबार है तो साल गुज़रने के बाद उसके पास जो कुछ नक़द रक़म या सामान है उसकी ज़कात उस पर फ़र्ज़ है और सामान का मूल्य निकालते समय उनके उसी दिन के मूल्य का एतबार होगा जिस दिन वो उनकी ज़कात अदा कर रहा है।

हाजत–ए–अस्लिया (ज़रुरी ज़रुरतें) का मतलब

जो चीज़ अस्ल ज़रूरतों के लिये हो उसमें ज़कात फ़र्ज़ नहीं होती। अस्ल ज़रूरत की मिसाल में फ़ुक़्हा (धार्मिक विद्वान) ने रहने के मकान, पहनने के कपड़े, सवारी के जानवर और गाड़ी, खेती या फ़ैक्ट्री के यन्त्र और घर के फ़र्नीचर इत्यादि चाहे वे चीज़ें कई हों और उनको किराये पर उठाता हो तब भी उन पर ज़कात वाजिब नहीं होती है।

ज़कात की मात्रा

ज़कात की वाजिब मात्रा किसी भी माल में उसका चालीसवा हिस्सा या ढ़ाई प्रतिशत तय की गयी है।

शेयर पर ज़कात

ज़कात हर प्रकार के व्यापारिक माल पर अनिवार्य है चाहे वो जानवरों का व्यापार हो या गाड़ियों का व्यापार हो या ज़मीन का और क्योंकि शेयर भी व्यापारिक माल के अन्तर्गत आते हैं अतः उन पर भी ज़कात फ़र्ज़ है। अगर किसी ने शेयर इस उद्देश्य से ख़रीदे हैं कि उन पर वार्षिक लाभ लेगा, उनको बेचेगा नहीं, तो उसको अपनी कम्पनी से ख़बर करनी चाहिये कि उसका कितना सामान अचल है जैसे बिल्डिंग और मशीनरी इत्यादि की शक्ल और कितना माल चल है जैसे नक़द, कच्चा माल तैयार माल इत्यादि। जितनी सम्पत्ति अचल है उन पर ज़कात नहीं होगी और जितनी सम्पत्ति चल है उन पर ज़कात अनिवार्य होगी। अगर कम्पनी के माल का विवरण न मिल सके तो इस हालत में एहतियात के तौर पर पूरी ज़कात अदा कर दी जाये और अगर शेयर इस उद्देश्य से ख़रीदे हैं कि जब बाज़ार में उनकी क़ीमत बढ़ जायेगी तो उनको बेच करके लाभ कमायेगें तो पूरे शेयर की पूरी बाज़ारी क़ीमत पर ज़कात अनिवार्य होगी। जैसे आपने पचास रूपये के हिसाब से शेयर ख़रीदे और मक़सद ये था कि जब उनकी कीमत बढ़ जायेगी तो उनको बेचकर मुनाफ़ा कमाएंगे। उसके बाद जिस दिन आपने ज़कात का हिसाब निकाला उस दिन शेयर की क़ीमत साठ रूपये हो गयी तो अब साठ रूपये के हिसाब से उन शेयर की मालियत निकाली जायेगी और उस पर ढ़ाई प्रतिशत के हिसाब से ज़कात अदा करनी होगी।

प्राविडेन्ड फ़न्ड पर ज़कात

ज़कात फ़र्ज़ होने की एक अहम शक्ल ये भी है कि उस पर इनसान का सम्पूर्ण नियन्त्रण भी हो। इसी कारण से फ़ुक़्हा (धर्मज्ञाताओं) ने कहा है कि अगर किसी को कर्ज़ दिया और बाद में क़र्ज़ लेने वाला उससे इनकार कर रहा है बज़ाहिर उसका मिलना मुश्किल है या किसी जगह डालकर भूल गया या किसी दरिया इत्यादि में गिर गया तो उन रूपयों की ज़कात वाजिब नहीं होगी। फिर जब अप्रत्याशित रूप से यह माल मिल जाये तो गुज़रे हुए सालों की ज़कात उस पर वाजिब नहीं होगी। ये रक़म जिस वक़्त मिली है उस वक़्त से उसका हिसाब लगाया जायेगा। (हिन्दिया 1/187)

जहां तक प्राविडेन्ड फ़न्ड का संबंध है तो इसमें एक हिस्सा वो होता है जो शासन उसमें मिलाकर देता है। जहां तक इस दूसरी बढ़ी हुई राशि का संबंध है तो चाहे उसे ईनाम कहा जाये या सेवा का मेहनताना जिसका अभी मालिक नहीं हुआ है। अतः उस पर गुज़रे हुए दिनों की ज़कात वाजिब होने का कोई करण नहीं है। चर्चा योग्य फ़न्ड का वो हिस्सा है जो सेवा के दौरान वेतन से कटकर जमा होता है इसका मामला ये है कि कर्मचारी इसका अधिकारी है लेकिन उस पर अधिकार प्राप्त नहीं हुआ है अतः इस रक़म पर भी गुज़रे हुए दिनों की ज़कात वाजिब नहीं होगी। उलमा–ए–मुहक़्क़िक़ीन का रूझान इसी तरफ़ है।

क़र्ज़ अदा करना

अगर कोई व्यक्ति पर्याप्त मात्रा का मालिक है लेनिक वो साथ ही कर्ज़दार भी है तो कर्ज़ के बराबर माल पर ज़कात अनिवार्य नहीं होगी। अगर क़र्ज़ के बराबर अदा करने के बाद भी निसाब के बराबर माल बच रहा है तो उस पर उसी के बराबर ज़कात अनिवार्य हो जायेगी।

सोने और चांदी को मिलाना

किसी के पास साढ़े सात तोला (612.480 ग्राम) सोना न हो लेकिन उसके पास कुछ सोना और कुछ चांदी मौजूद हो तो क्या उसके ऊपर ज़कात वाजिब हो जायेगी। इस मसले में दो राय हैं:

1– इमाम शाफ़ई और कई दूसरे लोगों के निकट उस पर ज़कात वाजिब नहीं होगी। इमाम शाफ़ई ने अपनी किताब अलउम में इस पर बहस की है कि उसके पास न सोने की पर्याप्त मात्र है न चांदी की तो उस पर ज़कात कैसे वाजिब हो सकती है जबकि दोनो अलग–अलग जिंस (धातु) हैं।

2– दूसरी राय हनफ़ी मसलक और कई दूसरे लोगों की है कि अगर दोनों के मिलाने से पर्याप्त मात्रा हो जाये तो ज़कात अनिवार्य हो जायेगी। इस पर बहस बुकैर इब्ने अब्दुल्लाह रज़ि0 की रिवायत से कि ज़कात निकालने में सहाबा का तरीक़ा चांदी और सोने के मिलाने का था। फिर दोनों क़ीमत के एतबार से एक ही जिंस (धातु) हैं।

बहरहाल अक़्ली दलील दोनों तरफ़ से मज़बूत हैं लेकिन मनकूली दलील में इस एतबार से प्रथम पक्षधर का पक्ष कुछ मज़बूत घोषित किया जाता है कि हज़रत बुकैर की रिवायत हदीस की किताब में नहीं मिलती। फिर इमाम अबू हनीफ़ा और साहिबैन की बीच ये मतभेद है कि सोने और चांदी को मिलाने की कैफ़ियत क्या होगी।

इमाम अबू हनीफ़ा के निकट दोनों को मूल्य के अनुसार मिलाया जायेगा। यानि अगर किसी के पास दो तोला सोना और दो तोला चांदी है तो ये देखा जायेगा कि दो तोला सोना अगर बेच दिया जाये तो क्या साढ़े बावन तोला या उससे ज़्यादा चांदी हासिल हो जायेगी। अगर इतनी ज़्यादा चांदी हासिल हो सकती है तो वो साहिबे निसाब माना जायेगा। फ़तवा इमाम साहब के कथन ही पर है जबकि साहिबैन (अर्थात इमाम अबू हनीफ़ा के दो शिष्य इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) के नज़दीक दोनों को जुज़ (हिस्से) के एतबार से मिलाया जायेगा यानि वज़न के एतबार से अगर आधा निसाब सोने का और आधा चांदी या दो तिहाई साने का और एक तिहाई चांदी का या एक चौथाई सोने का और तीन चौथाई चांदी का पाया जा रहा हो तो ज़कात वाजिब हो जायेगी वरना नहीं।

इमाम साहब के कथन के अनुसार अगर सोने–चांदी की मामूली मात्रा भी किसी के पास हो तो वो साहिबे निसाब बन जायेगा और उसके लिये ज़कात लेना जायज़ नहीं रहेगा। इतनी मामूली मिक़दार बिल्कुल मामूली लोगों के पास भी आम तौर से रहती है। इस परिस्थिति में ये सवाल उठाया जाता है कि क्या मौजूदा हालात में साहिबैन के कथन को अपनाया जा सकता है। इसलिये कि साहिबैन के कथन पर चला जाये तो इसमे ज़कात देने वाले और लेने वाले दोनों का ख़्याल हो जायेगा और संतुलन बना रहेगा।

लेखक के ख़्याल से ऐसा करने की गुंजाइश है। इसलिये कि इस मसले का संबंध हालात के बदलने से है और इस बात पर सहमति है कि हालात बदल जाये तो आदेश बदल जाता है। फिर ये तो इफ़्ता के हुक्म में भी लिखा हुआ है कि मतभेद अगर साहिबैन और इमाम साहिब के बीच में तो मुफ़्ती उनमें से किसी पर भी फ़तवा दे सकता है। लिहाज़ा सामूहिक शोध के इस दौर में उलमा सहमत हो जायें तो इसकी गुंजाहश होगी। फिर इमाम साहब की एक रिवायत साहिबैन के कथन के मुताबिक़ भी है लिहाज़ा इमाम साहब के इस क़ौल को इस्तहबाब पर महमूल करके ततबीक़ की जा सकती है। मुफ़्ती किफ़ायत उल्ला साहब ने किफ़ायतुल मुफ़्ती में इसी तरह ततबीक़ दी है।

बात का अर्थ यह है कि व्यापारिक माल वाले मसले में मुफ़्ता बिही हुक्म से हटने की इजाज़त नहीं दी जा सकती जबकि दूसरे मसले में अगर उलमा इत्तिफ़ाक़ कर लें तो इसकी गुंजाइश है।

ज़कात के हक़दार

ज़कात की हैसियत चूंकि केवल सामान्य ख़र्च और इनसानी मदद की नहीं है बल्कि ये एक महत्वपूर्ण इस्लामी इबादत और शरई कार्य है इसलिये शरीअत ने इसके ख़र्च निश्चित कर दिये हैं, अल्लाह तआला का इरशाद है:

"ज़कात फ़क़ीरों, ग़रीबों, आमलीन (ज़कात के

एकत्रीकरण व बंटवारे के कार्यकर्ता) मुअल्लफ़तुल कुलूब, (इस्लाम कुलूब करने वालों के दिलजोई हेतु ख़र्च) गुलाम, क़र्ज़दार, अल्लाह के रास्तें में (जिहाद करने वाले) और यात्रियों के लिये, ये अल्लाह की तरफ़ से तय हुआ काम है और अल्लाह बड़ा ज्ञानी और हिकमत वाला (तत्वदर्शी) है।"

ज़कात को ख़र्च करने के बारे में कुरआन मजीद की ऊपर वर्णित आयत में स्पष्ट रूप से बताया गया है। इसके संबंध में बात यह है कि ज़कात सिर्फ़ उन्हीं लोगों को दी जा सकती है जो फ़क़ीर या ग़रीब हों। यानि जिनके पास या तो माल ही न हो या अगर हो तो निसाब तक न पहुंचता हो। यहां तक कि अगर उनके अधिकार में ज़रूरत से ज़्यादा ऐसा सामान मौजूद है जो साढ़े बावन तोला चांदी की क़ीमत तक पहुंच जाता है तो वो ज़कात के मुस्तहिक़ नहीं है। ज़कात का मुस्तहिक़ वो है जिसके पास साढ़े बावन तोला चांदी की मिल्कियत की रक़म या उतनी मालियत का कोई सामान ज़रूरत से ज़्यादा न हो। इसमें भी शरीअत का हुक्म ये है कि ज़रूरत मन्द को मालिक बना दिया जाये और वो जिस तरह चाहे उसे खर्च करे। इसीलिये बिल्डिंग के निर्माण में ज़कात नहीं लग सकती, न ही किसी संस्था के कर्मचारी की पगार में लग सकती है। इसी तरह कफ़न–दफ़न में ज़कात का पैसा लगाना ठीक नहीं है।

ज़कात अदा करने वाले को चाहिये कि अच्छी तरह पड़ताल करके सही जगह पर लगाने की कोशिश करे। श्रेष्ठ यह है कि सबसे पहले अपने रिश्तेदारों व क़रीबियों में ग़रीब की तलाश करे। रिश्तेदारों में ज़कात अदा करने से डबल सवाब मिलता है। एक ज़कात अदा करने का दूसरे सिलारहमी (रिश्तेदारी निभाना) करने का। यद्यपि दो रिश्ते ऐसे हैं जिनको ज़कात देना ठीक नहीं है। पहला पैदाइशी रिश्ता है जिसके तहत सभी नियम आते हैं। इसीलिए अपने बाप, दादा, नाना, नानी, दादी और उन से ऊपर को ज़कात देना ठीक नहीं है, इसी तरह बेटे, पोते, बेटी, पोती, नवासा, नवासी, और उनसे नीचे वालों पर ज़कात देना ठीक नहीं है। दूसरा निकाह का रिश्ता है इसलिए पति पत्नी को और पत्नी पति को ज़कात नहीं दे सकती है। इन दोनों रिश्तों के अलावा सभी रिश्तेदारों को ज़कात देना जायज़ है। जैसे– भाई, बहन, चचा, फूफी और ख़ाला इत्यादि, लेकिन शर्त यह है कि जिसको ज़कात दी जा रही है वह ज़कात का मुस्तहिक़ हो, यह भी ध्यान रहे कि अपने क़रीबी रिश्तेदारों को यदि यह बताकर ज़कात दी जाए कि यह ज़कात की रक़म है तो हो सकता है कि उन्हें बुरा लगे, इसीलिये शरीअत ने यह सहूलत दी है कि ज़कात देते समय यह बताना आवश्यक नहीं है कि यह ज़कात है।

मुस्तहिक़ होने के साथ साथ एक ज़रूरी शर्त ये है कि मुस्तहिक़ मुसलमान हो। इसीलिये ग़ैर मुस्लिम मुस्तिहिक़ को ज़कात की राशि देना ठीक नहीं है। आप स0अ0 ने फ़रमाया कि ज़कात मुसलमान मालदारों से ली जायेगी और ग़रीब मुसलमानों पर ख़र्च की जायेगी। (बुख़ारी 1496)

मदरसों में ज़कात ख़र्च करने में दोहरा सवाब मिलेगा। एक ज़कात का दूसरे इल्म को फैलाने और दीन की हिफ़ाज़त का।

इसी तरह क़रीबी रिश्तेदारों में ज़कात अदा करने से डबल सवाब मिलता है। एक ज़कात अदा करने का दूसरे सिला रहमी करने का। जैसे भाई, बहन, चचा, फूफी, मामू, भांजे इत्यादि को ज़कात देना शरीअत के अनुसार ठीक ही नहीं बल्कि श्रेष्ठ भी है। रसूलुल्लाह स0अ0 ने फ़रमाया:

"मिस्कीन को देने में एक सदक़े का सवाब है और रिश्तेदारों को देने में दो सदक़े का सवाब है, एक सदके का दूसरा सिलारहमी का।"

रमज़ानुल मुबारक में चूंकि हर फ़र्ज़ इबादत का सवाब सत्तर गुना बढ़ जाता है इसलिये रमज़ान में ज़कात देने में इन्शाअल्लाह सत्तर गुना सवाब की उम्मीद है। (लेकिन इसका मतलब ये नहीं कि सारी ज़कात रमज़ान में ही निकाल दी जाये और ग़ैर रमज़ान में फ़क़ीरों की ज़रूरतों का ख़्याल न रखा जाये, बल्कि ज़रूरत व मस्लिहत के एतबार से ख़र्च करने का एहतिमाम करना चाहिये)

एक फ़क़ीर को एक साथ इतना माल देना कि वो साहबे निसाब हो जाये बेहतर नहीं है, अलबत्ता अगर वो क़र्ज़दार हो और कर्ज़ की अदायगी के लिये बड़ी रक़म दी तो हर्ज नहीं।

कर्ज़दार व्यक्ति को कर्ज़ से बरी करने से ज़कात अदा न होगी, अलबत्ता यदि फ़क़ीर मक़रूज़ को ज़कात की रक़म दी, फिर उससे अपना क़र्ज़ वसूल कर लिया तो यह ठीक है।

रमज़ान का महीना पवित्र कुरआन की रोशनी में

अब्दुस्सुबहान नाख़ुदा नदवी

इस मुबारक महीने को यह महत्व प्राप्त है कि कुरआन में इसका नाम आया है। इसके अतिरिक्त किसी और महीने को यह महत्व प्राप्त नहीं हो सका है। इसी तरह केवल रमज़ान का महीना को यह श्रेष्ठता प्राप्त है कि इस्लाम के एक महान कार्य को इस के साथ संबंधित किया गया वह भी इस प्रकार कि इस महीने के अतिरिक्त वह किसी दूसरे महीने में इसको पूरा करना सम्भव नहीं है। यहां तक कि नबी अकरम स0अ0 के अनुसार जानबूझ कर बिना किसी आवश्यकता के इस मुबारक महीने का एक भी रोज़ा छोड़ दिया जाए तो जिन्दगी भर के रोज़े मिल कर भी इसका बदला नहीं दे सकते हैं। इसी प्रकार पवित्र कुरआन के अनुसार इस महीने में एक ऐसी रात है जो बहुत महत्व रखती है। इतना अधिक महत्व की हज़ार महीने मिल कर भी अपने लिए वह महत्व उत्पन्न नहीं कर सकते जो अकेले इस रात को प्राप्त है। इसी रात पवित्र कुरआन अवतरित हुआ। इसी रात फरिश्ते ज़मीन पर उतरते हैं। इसी रात अल्लाह की तरफ से फैसले किये जाते हैं। जैसे अल्लाह की रहमतें इस रात बारिश की तरह बरसती हैं और आसमान का ज़मीन से एक विशेष संबंध स्थापित होता है। अल्लाह के फरिश्तों से जिनमें हज़रत जिबराईल अमीन भी हैं ये पूरी ज़मीन जगमगा उठती है। पूरी मानवता के लिए यह रात सलामती का संदेश है। वास्तव में ये कुरआन के उतरने की याद है जो चौदह सौ साल पहले कार्यान्वित (अमल में आया) हुआ था। मानवता तबाही के द्वार पर थी बस कोई क्षण था जो इसे तबाही के गहरे गढ़े में गिर कर सदा के लिए सुला देता। इस अवसर पर इसी रात पवित्र कुरआन उतारा गया और साहबे कुरआन मुहम्मद स0अ0 नबूवत से सम्मानित किये गये। और पूरी मानवता की सुरक्षा की गई।

पवित्र कुरआन के प्रकाश में रमज़ान के रोज़ो का अर्थ संयम (तक़वा) के वैभव व प्रतिष्ठा को बढ़ाना है जिससे दिल की दुनिया में एक पवित्र क्रान्ति आ जाए जिससे दुनिया को दिखाने वाले कामों से मन खट्टा हो जाए, हर काम में खुदा की उपासना कार्यरत हो जाए कि बस जीवन का आनन्द ही आ जाए। वास्तविकता यह भी है कि खुदा को पाने के भाव से परिपूर्ण कार्य ही जिन्दगी में रंग भरते हैं। दिखावे की ज़िन्दगी एक बोझ है। इस बनावटी व्यवस्था में मनुष्य आखिर कब तक रह सकता है। रोज़ा वास्तव में मनुष्य को सभी जीवधारियों से अलग होकर खुदा के लिए काम करने का ढ़ंग सिखाता है। हज़ार बार अवसर प्राप्त होने के बाद भी सच्चा रोज़दार अपने रोज़े में विघ्न नहीं उत्पन्न होने देता। इसलिए की यही विचार उसके मस्तिष्क में होता है कि रोज़ा खराब करके लोगों के सामने रोज़दार बने रहे तो आखिर क्या लाभ अल्लाह के निकट तो वह रोज़दार नहीं रहा। यही संयम की आत्मा है। जीवन के विभिन्न भागों में संयम की इसी आत्मा को जागरुक करने हेतु रोज़े फर्ज़ किये गये हैं। मुबारक हैं वह लोग जो इस महीने में संयम का पाठ पढ़ते हैं। जिस के मैदान की पूरी जिन्दगी रोज़े का ही एक अमली नमूना बन जाती है। संयम इनके जीवन में एक रेखा खींच देता है जिससे सही और ग़लत का अन्तर करने की तमीज़ पैदा हो जाती है। और 'वह लोग क्या कहेंगे' के धोखे से निकल कर 'अल्लाह देख रहा है' के सच्चे मैदान में कदम रखता है। यहीं से वह क्रान्ति पैदा हो जाती है जो सारे जीवन पर हावी हो जाती है।

पवित्र कुरआन ने रमज़ान के रोज़ो की चर्चा के दौरान दुआ के महत्व को असरदार रूप से बयान किया है। बयान करने का ढ़ंग इतना अलग हो कि बस बन्दा मिट जाए। इरशाद है : जब मेरे बन्दे आप से मेरे बारे में पूछें तो बताइये कि मैं बहुत निकट हूँ, पुकारने वाला जब भी मुझे पुकारता है मैं इस की पुकार सुनता हूँ, लोगों से कहिए कि वह मुझसे मांगते रहें और मुझ पर ही ईमान रखें ताकि वह सीधे रास्ते पर रहें। इस आयत से पहले और बाद रमज़ान की इबादत और मसलों का ज़िक्र है। बीच में अचानक दुआ के स्वीकार होने और अपने क़रीब होने को बताने का यह निराला अन्दाज़ स्वंय ये बताने के लिए पर्याप्त है रमज़ान का महीना जीवन की बहार है। अमल के मुरझाते हुए फूल अगर इस महीने में भी न खिल सके तो फिर ऐसा ज़माना आने वाला नहीं। इस महीने में यदि कोई अपनी मग़फिरत न करवा सका तो इस से बढ़कर अमल का अपाहिज कोई नहीं। आप स0अ0 के सामने जिबरील ने ऐसे व्यक्ति को अभिशाप दिया जिसे रमज़ान का पूरा महीना मिले और वह अपने आप को बख़्शवा न सके। फरमाया कि हलाक हो जाए वह व्यक्ति जिसे रमज़ान का पूरा रोज़ा मिले और फिर भी इसकी माफी न हो सके। आप स0अ0 ने इस पर आमीन कहा। यानि इस इशारा दिया कि ऐसे इन्सान को बर्बाद हो जाना चाहिए।

रोज़े का इतिहास

सैय्यद सुलेमान नदवी रह०

रोज़े का अर्थः

रोज़ा इस्लाम की इबादत का तीसरा रुक्न है, अरबी में इसको "सोम" कहते हैं, जिसके शाब्दिक अर्थ "रुकने और चुप रहने के हैं" कई व्याख्या करने वालों की व्याख्याओं के अनुसार कुरआन पाक में इसको कहीं–कहीं "सब्र" भी कहा गया है जिसका अर्थ "नफ़्स पर रोक लगाना" साबित क़दम रहना और धैर्यता का है। इन अर्थों से ज़ाहिर होता है कि इस्लाम की ज़बान में रोज़े का क्या अर्थ है?वो अस्ल में नफ़्सानी इच्छाओं व हवस से अपने आप को रोकने और हिस्र और हवस में डगमगा देने वाले मौक़ों मे अपने आप को रोके रहने और साबित क़दम रखने का नाम है। रोज़ाना प्रयोग में साधारणतयः नफ़्स की इच्छाओं और इन्सानी हिस्र का आधार तीन चीज़ें हैं। यानि खाना, पीना और मर्द–औरत के लैंगिक संबंध। उन्ही से एक निश्चित समय तक रुके रहने का नाम शरीअत में रोज़ा है लेकिन वास्तव में इन ज़ाहिरी इच्छाओं के साथ आन्तरिक इच्छाओं और बुराइयों से दिल और ज़बान को सुरक्षित रखना भी रोज़े की वास्तविकता में दाख़िल है।

रोज़े का प्रारम्भिक इतिहासः

रोज़े का प्रारम्भिक इतिहास मालूम नहीं, इन्गिलशतान के मशहूर हकीम हरबर्ट स्पेन्सर (Herbet Spencer) अपनी किताब प्रिन्सिपल्स आफ़ सोशालाजी (Principles Of Sociology) (सामाजिक सिद्धान्त) में कुछ वहशी क़बीलों की मिसाल के आधार पर सोचता है कि रोज़ा का प्रारम्भ वास्तव में इस तरह हुआ होगा किः लोग वहशत के ज़माने में खुद भूखे रहते होंगे, और समझते होंगे कि हमारे बदले हमारा खाना इस तहर मर्द–औरत को पहुंच जाता है। लेकिन ये विचार अक़्ल वालों की निगाह में स्वीकृति न प्राप्त कर सका। बहरहाल मुश्रिकाना मज़हबों में रोज़े की हक़ीक़त के चाहे कुछ ही कारण हों लेकिन इस्लाम का रोज़ा अपने प्रारम्भ की व्याख्या में अपने पीरों का मोहताज नहीं हैः (अनुवादः मुसलमानों! रोज़ा तुम पर इस तरह फ़र्ज़ किया गया है जिस तरह तुमसे पहली क़ौमों पर फ़र्ज़ हुआ ताकि तुम परहेज़गार बनो, माहे रमज़ान वो महीना है जिसमें कुरआन उतारा गया जो इन्सानों के लिये सरापा हिदायत की दलीलें और सच व झूठ में फ़र्क़ करने वाला बन कर आया है। तो जो इस रमज़ान को पाये वो इस महीने भर के रोज़े रखे और जो बीमार हो, सफ़र पर हो, वो दूसरे दिनों में रख ले, खुदा आसानी चाहता है, सख़्ती नहीं ताकि तुम रोज़ों की गिनती पूरी कर सके और (ये रोज़ा इसलिये फ़र्ज़ हुआ) ताकि तुम खुदा के इस हिदायत देने पर उसकी बड़ाई करो और ताकि तुम शुक्र बजा लाओ)

इन आयाते पाक में न केवल रोज़े के कुछ आदेश, बल्कि रोज़े का इतिहास, रोज़े की हक़ीक़त, रमज़ान का महत्व, और रोज़े पर एतराज़ के ये सभी काम स्पष्ट रूप से बयान हुए हैं।

नीचे के पन्नों पर हम उन पर प्रकाश डालते हैं।

रोज़े का धार्मिक इतिहास

कुरआन पाक ने इन आयातों की व्याख्या की है कि रोज़ा इस्लाम के साथ विशेष नहीं बल्कि इस्लाम से पहले भी वो सभी धर्मों के एक संग्रहित आदेश का हिस्सा रहा है। जाहिल अरब का पैग़म्बर स0अ0 उम्मी जो विरोधियों के अनुसार दुनिया के इतिहास से अनभिज्ञ था, वो मुद्दई है कि दुनिया के सभी देशो में रोज़ा फ़र्ज़ इबादत रहा है। अगर ये दावा तमाम सही तथ्यों पर आधारित है तो उसके ज्ञान के ऊपर के साधन में क्या शक रह जाता है। इसी दावे की तस्दीक़ में यूरोप के प्रमाणित तथ्यों का हम हवाला देते हैं।

इन्साइक्लोपेडिया बरटानेका का लेखक रोज़े (Fasting) पर लिखता है, "रोज़े के उसूल और तरीक़े को आबो हवा, क़ौमी तहज़ीब और आसपास के हालात के इख़्तलाफ़ से बहुत कुछ भिन्न है लेकिन बड़ी मुश्किल से किसी ऐसे मज़हब का नाम हम ले सकते हैं जिसकी धार्मिक व्यवस्था में रोज़ा किसी न किसी रूप में स्वीकार न किया गया हो"

आगे चलकर लिखता है, "मानो कि रोज़ा मज़हबी रस्म की हैसियत से हर जगह मौजूद है" हिन्दुस्तान को सबसे अधिक पुराने होने का दावा है, लेकिन व्रत यानि रोज़ा से वो भी आज़ाद नहीं। हर हिन्दी महीने की ग्यारह

बारह को ब्राहम्णों पर एकादशी का रोज़ा है। इस हिसाब से साल के चौबीस हुए, कई ब्राहम्ण कार्तिक के महीने में हर दोशम्बा को रोज़ा रखते हैं, हिन्दू जोगी चिल्ला खींचते हैं, यानि चालीस दिन तक खाने पीने से परहेज़ करते हैं। हिन्दूस्तान के सभी धर्मों में, जैनी धर्म में रोज़ा की सख़्त शर्तें हैं। चालीस चालीस दिन तक उनके यहां एक रोज़ा होता है। गुजरात व दकन में हर साल कई कई हफ़्ते का रोज़ा रखते हैं। पुराने मिस्रियों के यहां भी बहुत से धार्मिक त्योहारों के शुमूल में नज़र आता है। यूनान में केवल औरतें थ्योमोफ़िरया की तीसरी तारीख़ को रोज़ा रखती थीं। पारसी धर्म में आम पीरों पर रोज़ा फ़र्ज़ नहीं बल्कि उनकी इल्हामी किताब की आयत से साबित होता है कि रोज़ा का आदेश उनके यहां मौजूद था। ख़ासकर धार्मिक गुरूओं के लिये पांच साला रोज़ा आवश्यक था।

यहूदियों में भी रोज़ा अल्लाह तआला की तरफ़ से फ़र्ज़ है। हज़रत मूसा अलै0 ने कोह पहाड़ पर चालिस दिन भूखे प्यासे गुज़ारे। इसलिये आम तौर से यहूदी हज़रत मूसा की पैरवी में चालिस दिन रोज़ा रखना अच्छा समझते हैं। लेकिन दस दिन का रोज़ा उन पर फ़र्ज़ है जो उनके सातवें महीने (तश्रीन) की दसवीं तारीख़ को पड़ता है। और इसलिये वो इसको आशूरा (दसवां) कहते हैं। यही आशूरा का दिन वो दिन था जिसमें हज़रत मूसा अलै0 को तौरात के दस आदेश दिये गये। इसलिये तौरात में इस दस रोज़े की बहुत ताकीद है। और इसके अलावा यहूदी सहीफ़ों में और दूसरे रोज़ों के आदेश भी स्पष्टता के साथ दिये गये हैं।

ईसाई धर्म में भी हमको रोज़ा मिलता है

इसलिये हज़रत ईसा अलै0 ने भी चालिस दिन रोज़ा जंगल में रखा। हज़रत ईसा अलै0 जो के हज़रत यहया अलै0 के नक़्शो क़दम पर थे, वो भी रोज़े रखते थे और उनकी उम्मत भी रोज़ा रखती थी। यहूदियों ने अलग अलग ज़मानों में अलग–अलग वाक़्यों की याद में बहुत से रोज़े बढ़ा लिये थे और ज़्यादातर ग़म के रोज़े थे। और इस ग़म को ज़ाहिर करने के लिये अपनी ज़ाहिरी सूरत को भी वो उदास और ग़मग़ीन बना लेते थे। हज़रत ईसा अलै0 ने अपने ज़माने में ग़म के इस बनावटी तरीक़े को मना कर दिया। शायद इसी प्रकार के किसी रोज़े का अवसर था कि कुछ यहूदियों ने आकर हज़रत ईसा अलै0 पर एतराज़ किया कि तेरे शागिर्द क्यों रोज़ा नहीं रखते, हज़रत ईसा अलै0 ने इसके जवाब में फ़रमायाः "क्या बाराती जब दूल्हा उनके साथ है, रोज़े रख सकते हैं। जब तक दूल्हा उनके पास रोज़े नहीं रख सकते, पर वो दिन आयेगा जब दुल्हा उनसे जुदा कर दिया जाएगा, तब उन्ही दिनो में रोज़ा रखेंगे।"

इस वाक्य में दुल्हा से उद्देश्य स्वंय हज़रत ईसा अलै0 की मुबारक ज़ात और बाराती से मुराद उनकी पैरवी करने वाले हैं। ज़ाहिर है कि जब तक पैग़म्बर अपनी उम्मत में मौजूद है, उम्मत को ग़म करने की ज़रूरत नहीं, इन्हीं भागों से ज़ाहिर है कि हज़रत ईसा अलै0 ने मूसवी शरीअत से फ़र्ज़ व मुस्तहब रोज़ों को नही बल्कि ग़म के कारण स्वंय के बनाए हुए रोज़ों को मना फ़रमाया। उन्होने खुद अपनी पैरवी करने वालों को बिना दिखावे का और मुख़लिसाना रोज़े रखने की नसीहत फ़रमायी है। चुनान्चे आप अपने पैरोकारों को फ़रमाते हैः "फिर जब तुम रोज़ा रखो दिखावा करने वालों की तरह अपना चेहरा उदास न बनाओ" क्योंकि वो अपना मुंह बिगाड़ते हैं कि लोगों के नज़दीक रोज़ादार ठहरें हैं, तुमसे सच कहता हूं कि वो अपना बदला पा चुके हैं, पर जब तुम रोज़ा रखो, अपने सर में तेल लगाओ, ताकि तुम आदमी पर नहीं अपने बाप पर जो पोशीदा है रोज़ेदार ज़ाहिर है। और तेरा बाप जो पोशीदगी में देखता है तुझको उचित बदला दे"

एक दूसरे स्थान पर हज़रत ईसा अलै0 से उनके शार्गिद पूछते हैं कि हम पलीद रूहों को किस तरह निकाल सकते हैं वो इसके जवाब में फ़रमाते हैं कि ये जिन्स सिवाए दुआ और रोज़ा के किसी तरह से नहीं निकल सकते।"

अरब वाले भी इस्लाम से पहले रोज़ा से कुछ न कुछ जुड़े हुए थे, मक्का के क़ुरैश जाहिलियत के दिनो में आशूरा (यानि दस मुहर्रम) को इसलिये रोज़ा रखते थे कि इस दिन ख़ाना–ए–काबा पर नया ग़िलाफ़ डाला जाता था, मदीना में यहूद अपना आशूरा अलग मनाते थे, यानि वही अपनी सातवी महीने की दसवीं तारीख़ को रोज़ा रखते थे।

उपरोक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि क़ुरआन की ये आयत (अनुवादः मुसलमानों तुम पर रोज़ा इस तरह लिखा गया जिस तहर तुमसे पहलों पर लिखा गया) किस हद तक एतिहासिक तथ्यों पर आधारित है।

अल्लाह की याद

ज़बान की ख़ूबियों में एक ख़ूबी ये है कि वो ज़्यादा से ज़्यादा अल्लाह का मुबारक नाम ले। जो लज़्ज़त व मज़ा अल्लाह का नाम लेने में है वो किसी में नहीं। ख़ासकर अल्लाह शब्द ऐसा प्यारा और रूह को छू लेने वाला है, जिसकी लज़्ज़त को वही जानता है, जिसकी ज़बान पर ये मुबारक लफ़्ज़ चढ़ा हुआ होता है। हर ग़म को दूर करने वाला, हर तकलीफ़ की राहत, हर दर्द की दवा अल्लाह शब्द में छिपी हुई है। मुसलमान की ज़िन्दगी के हर उतार—चढ़ाव में ये शब्द समाया हुआ है। इसके बग़ैर किसी मुसलमान की ज़िन्दगी गुज़र ही नहीं सकती है। इस वक़्त से लेकर ज़िन्दगी के आख़िरी लम्हे तक बल्कि मरने के बाद दफ़नाने तक और दफ़नाने के बाद ईसाले सवाब, उसके मग़फ़िरत के कलिमे अदा करने में उसके बग़ैर चारा नहीं।

जब बच्चा पैदा होता है तो सबसे पहले उसक कानों में अज़ान कही जाती है। उसके कान अल्लाह के लफ़्ज़ से कई बार एक मजलिस में परिचित होते हैं। हर अज़ान में ग्यारह बार अल्लाह का नाम आता है।

इसी तरह इन्तिक़ाल के समय कलिमा तैय्यबा पढ़ने को कहा जाता है। पास बैठने वाला इस कलिमे को पढ़ता है और ख़ुदा मरने वाले को तौफ़ीक़ देता है कि वो दुनिया से जाते जाते इस मुबारक कलिमे को अपनी ज़बान से अदा करे। जिसे अदा करने से शैतान को जो मरने वाले का अच्छा ख़ात्मा देखना नहीं चाहता, नामुरादी मिलती है, और मरने वाला ईमान की हालत में जाता है।

मरने के बाद जनाज़े की नमाज़ में सारे नमाज़ी खड़े होकर जनाज़े की नमाज़ पढ़ते हैं और अल्लाह का नाम बेशुमार बार लिया जाता है। इमाम ज़ोर से अल्लाहुअकबर कहता है। मुर्दा जबकि ज़िन्दगी की सारी चीज़ों से महरूम रहता है, लेकिन इन कलिमों का उस पर जो असर होता है, वो ख़ुदा ही को मालूम है।

क़ब्र में रखते हुए भी लोग अल्लाह का नाम लेते हैं। और उसको ख़ाक के सुपुर्द करते हैं। मिट्टी देने के बाद फ़ातिहा या ईसाले सवाब की शक्ल में बग़ैर अल्लाह के लफ़्ज़ के चारा नहीं, ज़्यादा से ज़्यादा लोग अल्लाह का नाम लेते हैं।

ये तो पैदाइश व मौत के वक़्त का हाल है जो दूसरे लोग अल्लाह का नाम लेकर इस आजिज़ व मजबूर पर अल्लाह के मुबारक नाम के ज़रिये रहमत की बारिश करते हैं। लेकिन ख़ुद उसकी ज़बान को नूर व सरवर बख़्शने का ज़रिया दुआ और कलिमे हैं, जिनकी तलक़ीन आप स०अ० ने फ़रमायी है फिर उससे हर वक़्त एक मुसलमान का वास्ता पड़ता है।

मौलाना मुहम्मद सानी हसनी रह०

R.N.I. No.
UPHIN/2009/30527

ARAFAT KIRAN

Raebareli

Postal Reg. No.
RBL/NP -19

Issue: 06-07 JUNE - JULY 2017 VOLUME: 09

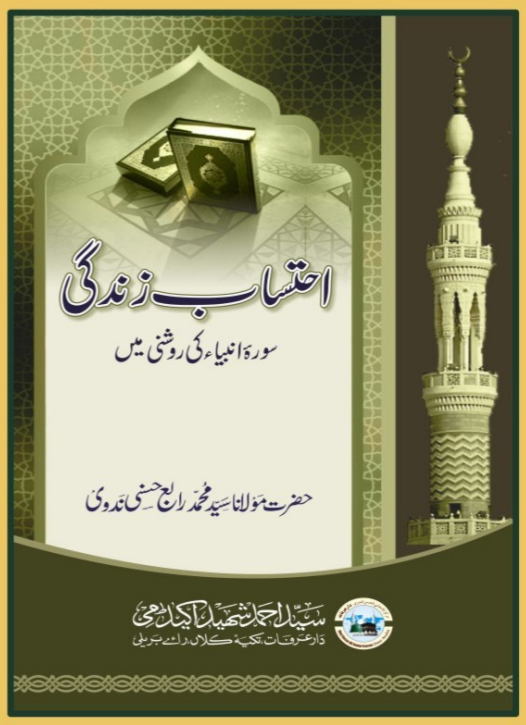

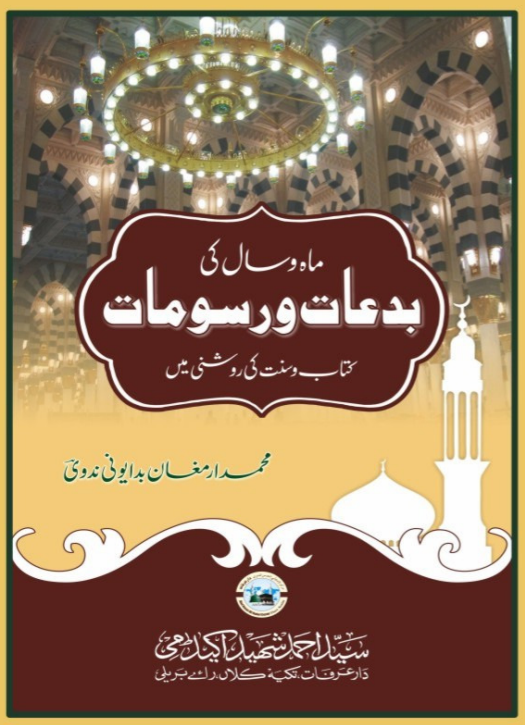

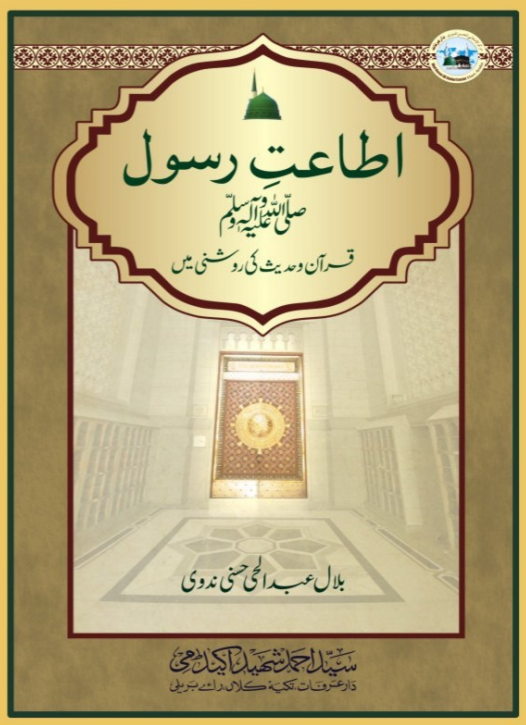

Editor: Bilal Abdul Hai Hasani Nadwi

MARKAZUL IMAM ABIL HASAN AL-NADWI

Dare Arafat, Takiya Kalan, Raebareli, U.P.
Mobile:9565271812
E-Mail: markazulimam@gmail.com
www.abulhasanalinadwi.org

Printed & Published by: Mohammad Hasan Nadwi
On Behalf of: Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi
Printed at S.A. Offset Printers, Masjid ke peeche,Phatak
Abdullah Khan, Sabzi Mandi, Station Road, Raebareli, U.P.